॥ ॐ ॥

श्रावक-वनिता-बोधिनी

अर्थात्

गृहस्थ-जैन-स्त्रियोंके कतव्य-कर्मका संक्षिप्त विवरण ।
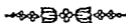
लेखक—

जयदयालमल्ल जैन

प्रकाशक—

श्रीमती जीवकोरबाई महिला ग्रन्थ भंडार

जुबिलीबाग, तारदेव—बम्बई ।

पौष वीराब्द २४५२ । विक्रमाब्द १९८२ ।

पञ्चमावृत्ति } १ दिसम्बर १९२५ इसवी { मूल्य ॥=) नव आना

प्रकाशक—
मगनबहेन, मन्त्रिणी श्री आत्मकोरबाई
महिलाश्रम भंडार,
जुबिलीबाग, तारदेव-बम्बई।

मुद्रक—
मूलचन्द किसनदास कापड़िया,
जैनविजय प्रेस खपाटिया चकला
तासवाला पोल-सूरत।

नये संस्करणकी भूमिका।

सुन पाठक भाइयो तथा पाठिका बहिनो ? आजसे १० वर्ष पूर्व इस पुस्तकके तीन संस्करण मेरे स्वर्गीय पूज्य पिता श्रीमान माणिकचन्द हीराचन्दने प्रकाशित करवाये थे, इसके पश्चात् अभी चतुर्थ संस्करण भी छपाया गया था सो भी सब विक्रय होगई। इसको पचम संस्करणमें छपानेके प्रथम कई टीका टिप्पणी भी की गई थीं सो सब पृथक्कर मूल पुस्तकके समान सरल कर दी है।

भूमिका पूर्ण करनेके प्रथम यह पुस्तक जैनधर्मभूषण, धर्मवीर, श्रीमान् ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीकी सेवामें समालोचनार्थ भेजी की गई थी। उन्होंने कई बातें अनावश्यक समझ पुस्तकसे पृथक् कर असली नकलके समान रखकर पीछा देनेकी कृपा की अत मैं धन्यवादपूर्वक उनका आभार मानती हूं।

यह पुस्तक गृहस्थ महिलाओंके जीवनके लिये बोधक रूप है इसमें कन्यावस्थासे लेकर जैन श्राविका होने पर्यन्त तककी सब शिक्षायें वर्णन की गई हैं। इस कारण प्रत्येक कन्याशालाओं तथा आश्रमोंकी चतुर्थ श्रेणीमें अवश्य पढाने योग्य है। इसका अनुवाद गुजराती भाषामें तो होचुका है और गुजराती बहिनें पढकर लाभ भी उठा रही हैं, उसका नाम "श्राविका सुबोध" है, किंतु महाराष्ट्री भाषामें उसका अनुवाद न होनेके कारण महाराष्ट्री बहिनें उसके लाभसे वंचित हैं। इस कारण महाराष्ट्री भाषामें उसका उल्था होना अत्यन्तावश्यक है, क्योंकि दक्षिण महाराष्ट्रमें खान पान

आदिकी क्रिया शास्त्रोक्त नहीं है मा सब समझमें आजायगा। मैं दक्षिण महाराष्ट्र जैन सभासे प्रार्थना करती हूँ कि इसको वे भाषान्तर कर छपावें तथा स्त्रियोंमें वितरण करें तथा कन्याशालाओंमें अन्य साहित्य पुस्तकोंके स्थानमें इसके पढ़ानेका उद्योग करें।

अन्तमें मैं भाइयों और बहिनोंसे प्रार्थना करती हूँ कि यदि कोई भूल, चूक या त्रुटियां रह गई हों तो कृपाकर मुझे सूचित करें जिससे भविष्य-संस्करणमें व शुद्ध कर दी जावें।

दि० जै० श्राविकाश्रम, तारदेव, बम्बई नं० ७ ता० २९ ११-२	समाजसेविका— मगनबहन माणिकचन्द झवेरी।

अनुक्रमणिका।

नोट—इसके अतिरिक्त प्रत्येक प्रकरणके अंतर्गत बहुतसी ऐसी ऐसी बातें भी लिखी गई हैं, जो स्त्रियोंके लिये अत्यन्त उपयोगी और मनन करनेयोग्य है।

विज्ञापन।

हमारे यहां नीचे लिखी स्त्री-उपयोगी पुस्तकें भी मिलती हैं।

|=) श्राविकासुबोध (गुजराती)।

||) सौभाग्य रत्नमाला।

||) उपदेश ,, ।

||) ऐतिहासिक जैन स्त्रियां।

(यह पुस्तक हिन्दीके अतिरिक्त मराठी भाषामें भी है।)

|-) चंपा।

=) श्राविकासुबोध स्तवनावली।

इनके अतिरिक्त प्रत्येक प्रकारकी धार्मिक और स्त्री-उपयोगी तथा सर्व साधारणोपयोगी पुस्तकें भी हमारे यहां मिल सकती हैं।

पता—

मैनेजर, जीवकोरबाई महिला-ग्रंथ-भंडार,

जुबिलीबाग-तारदेव

बम्बई।

अशुद्धि शुद्ध पत्रक ।

पृष्ठ	लाइन	अशुद्ध	शुद्ध
१	८	निन	जिन
१२	२२	मागपर	मार्गपर
१३	१८	धम	धर्म
१६	४	परकाग	पर काम
"	"	पुण्यकम	पुन्यकर्म
"	२१	कतव्य	कर्तव्य
"	२२	पूण	पूर्ण
२३	१३	को ̊	कोई
"	१४	कर्मया	कर्मयोगसे
२४	२१	कतव्यों	कर्तव्यों
३२	८	सभावना	सभावना
४७	११	वीवराग	वीतराग
५०	८	मनुनमी	मनुनकी
५९	९	घटेमें	घटे
६३	२	आगे होने	आगे
६७	१२	कैसा	कैसी
९२	१	प्रक ण	प्रकरण
९२	२	कतव्य	कर्तव्य
९२	११	पापकर्मक	पापकर्मके
९८	२१	सावधान	सावधानी
१०९	२	सतक	सूतक
१०६	४	म्नान न	स्नान

र० रु० श्राविकाश्रम, बम्बई।

उपर्युक्त नामकी संस्था आज लगभग १६ वर्षसे जैन-स्त्री समाजकी और विशेषतः विधवा-संसारकी जैसी कुछ सेवा कर रही है वह सब पर प्रकट है। वर्तमानमें ३० छात्राएँ हैं। हिंदी, संस्कृत, गुजराती, मराठी और अंग्रेजी भाषाके स्कूली विषयोंके सिवाय सीना-पीरौना और धर्म-विषय सिखाकर स्त्रियोंके जीवनको पवित्र और उपयोगमय बना देना ही इसका मुख्योद्देश है। समर्थ बाइयोंसे १२) मासिक भोजनखर्च और असमर्थोंको वैसे ही (बिना खर्च लिए) भरती किया जाता है। समाजसे प्रार्थना है कि वह इसको चलानेमें हर प्रकारसे मदद दे। इसका स्थायी फंड १ लाख कर देनेकी बड़ी आवश्यकता है। अभी तक ७५०००) हो गया है। मासिक खर्च ८००) रु. है। विशेष नियम आदि नियमावली मँगा कर देखने चाहिए।

व्यवस्थापिका—

र० र० श्राविकाश्रम, जुबिलीबाग

ताड़देव, बम्बई।

चेतावनी।

(श्रीमती प० चन्दाबाईजी, आरा)

जागोरी जैन बहिनो, कुछ तो भला कमाओ।
मानुष जनमको पाके, मत व्यर्थ ही गमाओ ॥ १ ॥
चौरासी पार करके, आई कहीं ये वारी।
भाग्योंसे मिल गया है, सार्थक इसे बनाओ ॥ २ ॥
कुछ पापके उदयसे, नारीका जन्म पाया।
उसको समाज-हितकर, सब भाँतिसे बनाओ ॥ ३ ॥
प्राचीन जैनियोंका, साहस घटाया तुमने।
इस उच्च जातिको तुम, नीचा न कर दिखाओ ॥४॥
किस नींद सो रही हो, निज धनको खो रही हो।
ससारकी सरॉमें, मत ज्ञान-धन लुटाओ ॥ ५ ॥
माता पिता कुटुम्बी, सम्बधी लोग जितने।
भरतारसे भी विनती, कर जोडके सुनाओ ॥ ६ ॥
विद्या दो हमको माता, शिक्षा दो हमको भाई।
बिन ज्ञान हमको मूर्खा, मत जानकर बनाओ ॥७॥
निज स्वार्थमें कमीका, कुछ डर न दिलमें करना।
कन्या भी होवें विदुषी, यह ख्याल दिलमें लाओ ॥८॥
धर्मज्ञ विदुषी होकर, हम भी करेंगी सेवा।
ससार-यात्री पदको, जल्दी सफल बनाओ ॥ ९ ॥
इस भाँति विनती करके, चेतोरी जैन बहिनो।
होवे सफल मनोरथ, जिन-वाणी शरण आओ ॥१०॥

श्री वीतरागाय नमः ।

श्रावक वनिता बोधिनी ।
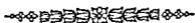
प्रथम प्रकरण

स्त्री पर्याय

दोषरहित गुणगण सहित, चौबीसों जिनराज,
मन वच तनकर नमत हों, सिद्ध होनके काज ।
प्रणमूं श्रीगुरुके चरण, जे निग्रंथ सज्ञान,
पुनि वन्दौं जिन धर्मको, मिथ्या,तम हर-भान ।
काल दोषके हेतुसे, मति गति भई अति हीन,
श्रद्धा ज्ञानाचरण तप, दिन दिन होत मलीन ।
उत्तम शातिन मध्य लखि, क्रिया अधिक निकृष्ट,
श्रावक वनिता बोधिनी, लिखूं सजन हित इष्ट ।

इस संसारके सारे जीव सुखका लाभ और दुःखका नाश चाहते हैं। ऐसा कोई भी जीव नहीं जो दुःखमें रहकर सुखकी इच्छा न करता हो; परन्तु ये प्रायः सारे ही जीव सुख प्राप्त करने और दुख दूर करनेका ठीक ठीक कारण न जानने तथा मिथ्याचरणसे नाना भाँतिके शारीरिक और मानसिक

दु खोमे दुखी हो रहे हैं। फिर शास्त्रोंमें कहे हुए नर्क आदिक घोर दु खोंकी तो याद करनेमे ही कलेजा काँप उठता है।

सचमुच यदि विचार करके देखा जाय तो धर्म धर्म चिल्लानेवाले सब जीव धर्मके स्वरूपको ही नहीं जानते, जिससे अनेकों जगह भटकते और अनेकों दु खोंमें टकराते हैं, इसी कारण श्रीगुरुने अपनी बुद्धिसे धर्मका उपदेश देकर सच्चे सुखकी प्राप्तिका उपाय बताया है। उसीके अनुसार यहाँपर कुछ लिखा जाता है, आशा है हमारे भाई और बहिनें इसपर ध्यान देंगी।

आत्माके स्वभावको धर्म कहते ह। इस धर्मको जानकर इसमें आचरण करनेसे ही दु खका नाश होकर सच्चा स्वाधीन सुख मिलता है, इसे सब बुद्धिमान निर्विवाद स्वीकार करते हैं। साराश यह कि विना धर्मके सुखकी प्राप्ति होना असभव है।

आत्माका स्वभाव-धर्म (रागद्वेष रहित देखना, जानना) अनादि कालसे हिंसा असत्य चोरी, कुशील और तृष्णा आदि पाप-कर्मरूप प्रवृत्तिके कारण मलिन-राग द्वेष-रूप-हो रहा है, इसलिए उसे शुद्ध करनेका-पाप छोड अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और सन्तोषरूप प्रवर्तनेका उपदेश हमारे आचार्योंने जहां तहा दिया है, तथा आत्माके धर्मको घातनेवाले पाच पापोंके त्यागको धर्म कहा है। क्योंकि अहिंसादि धर्मोंके धारण करनेसे ही हम ससारके दु खोसे छूट, निजानन्द और परमात्म दशाको प्राप्त हो सच्चे सुखी हो सकते है। रत्नकरण्डश्रावकाचारमें कहा है कि -धर्म वही है जो नर्क,

निश्चय रहे कि जो पुरुष-श्रावकव्रतकी ११ प्रतिमाओंका भलीभांति पालन नहीं कर सकता वह मुनिव्रत धारण करने योग्य कदापि नहीं है। इसी प्रकार श्रावकव्रत पालनेकी योग्यता तभी हो सकती है जब पहिले मिथ्यात्व, अन्याय और अभक्ष्यका* त्याग किया जाय। जो स्त्री व पुरुष इन महान पापोंका सेवन करता हुआ भी अपनेको धर्मी श्रावक कहता है वह मानो अक्षर-शत्रु पुरुषको पंडित बनाता है अतएव जो स्त्री व पुरुष सच्चे सुखको चाहते हैं, उनको ये तीनों दोष सर्वथा त्यागने योग्य हैं।

वर्तमान कालमें गृहस्थाश्रमकी अवस्थाको देख खेदपूर्वक कहना पड़ता है कि इस विकराल पंचम कालके पापमय समयमें, यह तीनों दोष, जैन जातिमें दिन पर दिन बढ़ते ही चले जा रहे हैं और गृहस्थोंका क्रियाकाण्ड इतना बिगड़ता चला जा रहा है कि जिसका वर्णन करते "आपन जाँघ उघारिये आपहि मरिये लाज" की कहावत चरितार्थ होती है। यही कारण है कि आजकल मुनियोंका सद्भाव तो दूर रहा प्रतिमाधारी त्यागी संयमी पुरुषोंका मिलना भी दुस्तर प्रतीत होता है। शास्त्रोंके पढ़नेसे ज्ञात होता है कि प्राचीन समयमें मुनिगण स्थान स्थान पर घूम उपदेश देते, जिससे धर्मकी प्रभावना और उन्नति होती थी। उस समयके क्रियाकांड ज्ञाता गृहस्थोंके यहां उन्हें शुद्ध आहार मिलता

१ कुदेवादिका पूजना। २ सप्त व्यसन सेवन करना। ३ अष्टमूलगुण नहीं पालना। * मद्यादिकका भक्षण करना।

था। गृहस्थ लोग जानते थे कि साधु संयमीको आहार कराए बिना स्वतः आहार करना गृहस्थधर्मके विरुद्ध है। इसीलिए वे भोजन करनेके पहिले द्वारापेक्षण (प्रासुकजलसे भरा हुआ पात्र हाथमें ले द्वारपर खडे हो सुपात्र अतिथिकी राह देखना) करते और जब किसी सुपात्र सज्जन या साधुको आहार दान दे लेते तो अपना अहोभाग्य समझते थे। यदि किसी सुयोग्य श्रावक या साधुको भोजन देनेका संयोग न आता तो अपने भाग्यको बहुत ही कोसते और साधुओंके भोजनका समय निकल जानेपर आप भोजन करते थे। उन्हें यह भले प्रकार विदित था कि गृहस्थका घर षट्-कर्मोंकी आरम्भी हिंसाके कारण स्मशानतुल्य है, और बिना अतिथि संविभागके कदापि सफल और शुद्ध नहीं हो सकता है।

वर्तमानमें जैनियोंकी खानपानक्रिया इतनी बिगड गई है कि यदि कर्मयोगसे थोडा भी संयमधारी क्रिया-काडी भोजन करनेवाला किसीके घर आ जावे तो उसके भोजन योग्य सामग्रीका मिलना कठिन हो जाता है । यदि सामग्री भी मिल जाय तो क्रियापूर्वक रसोई बनानेवालेकी न्यूनता कैसे पूरी हो ! इस अवस्थामें यदि दो चार कर्मकाडी साधर्मी सज्जन किसी स्थानपर पहुच जायँ तो उन्हें शुद्ध भोजन कैसे मिले ? यही बडी कठिनाई है। ऐसे ही अनेक दोषोंसे इस निकृष्ट कालमें साधुव्रत धारण करना कठिन हो गया है— कोई क्षुल्लक ऐलकके व्रत धारण करनेका साहस नहीं करता (खेद)। त्यागी महान पुरुषोंके अभाव होनेसे जैन जातिसे

उपदेश उठ गया, जिससे मिथ्यात्व, अन्याय और अभक्ष्यका जोर बढ़ गया। जो पुरुष संसार और शरीरके भोगोंसे ममत्व घटाना चाहते हैं वे शुद्ध खान पानकी योजना न रख कहींसे नहीं आराम या परम संतोष करते हैं क्योंकि धर्मात्माओंको रोग दूर मेटनेवाली, सुबुद्धिको उत्पन्न करनेवाली शुद्ध क्रिया और आहार विधिकी भी आवश्यक्ता है। मलिन बुद्धि होने और धर्मसे अरुचि होनेका एक कारण अशुद्धाचरणका होना है। निर्बलता मूर्खता होनेका एक कारण विरुद्ध भोजन है। दुःख रोग आदिकी वृद्धि भी खानपानकी भ्रष्टतासे होती है अतः जान जैनी मात्रको क्रियाकांड और खानपान पर लक्ष्य रखना चाहिये तथा हीनताएं दूर करना चाहिए, परन्तु समयका प्रवाह और उसकी आवश्यक्ताएं भी हमें भूलना न चाहिए।

रसोई आदिकी क्रिया स्त्रियोंके आधीन है यदि स्त्रियां शिक्षिता हों तो रसोई अवश्य ही शुद्ध तैयार हो। तब उन्हें कोई अशुद्धाचरणका उलहना कैसे दे? अशिक्षिता स्त्रियां अकेला खानपान ही क्या गृहस्थीका प्रत्येक कार्य्य अविचारपूर्वक करती हैं। एक तो वे मूर्ख और उतावली हुआ ही करती हैं फिर यदि अशिक्षिता भी हों तो कहना ही क्या? वे गृहस्थीका प्रत्येक कार्य्य चक्की, चूल्हा, झाड़ना बुहारना, पानी छानना और ओखली—आदिको—ठीक ठीक विधिपूर्वक नहीं करतीं, शुद्धता और दयाका भी विशेष विचार नहीं रखतीं। इसमें उन अबलाओंका दोष नहीं है, पुरुषोंकी मूर्खता

तो उनसे भी बढ़कर हैं। पुरुषोंने स्त्रियोंको संतानोत्पत्ति करनेवाली मशीन समझ रक्खा है। उन्हें सोचना चाहिये कि स्त्रियां उनके गृह-संसार रचनेमें विश्वकर्मा हैं, वे तो केवल बाहरसे द्रव्य कमा ला देनेवाले हैं। स्त्रियां जैसा शुद्ध अशुद्ध खाना रांध देती हैं पुरुष उसे ही बड़ी मौजसे खा पीकर संतुष्ट होते हैं फिर स्त्रियोंको क्या पड़ी है जो नाना प्रकारसे शोध बीनकर धीरता और सावधानीसे रसोई बनायें तथा और और कार्य भी सावधानी और शुद्धतापूर्वक करें? कभी कभी तो ऐसा देखा जाता है कि स्त्रियां तो शुद्ध आचारयुक्त होती हैं और अपने रसोई आदि कार्योंको इस प्रकार करती हैं जिसमें हिंसादिक दोष टलें और संयम सधे, क्योंकि या तो वे इसे शास्त्रोंमें पढ़कर जान लेती हैं या विद्वानोंके उपदे-शोंमें सुन लेती हैं, और विचारती हैं कि यदि हम प्रमाद और अज्ञानतासे हिंसादिक पंच पाप उपार्जन करेंगी तो इसका कटुआफल हमें ही भोगना पड़ेगा। पति तो घरके काम देखने आते नहीं, जो कुछ पाप होगा हमारे सिर होगा। इसलिये वे कर्मकांडकी बड़ी ही अनुकूलता रखती हैं—चूल्हे चौकेकी शुद्धता, शरीर वस्त्रादिककी पवित्रता, रसोईकी सामग्रीकी मर्यादा तथा बर्तनादिकी स्वच्छताका ध्यान रख भोजन तयार करती हैं; परन्तु पुरुषोंका आचार ऐसा भ्रष्ट हो रहा है कि जूता पहिने, बाजारके कपड़ोंसे, दूकान पर या चौकेके बाहिर ही, अथवा हलवाईजीकी दुकानपर ही, शुद्ध अशुद्ध मिठाई या दूसरी सामग्री बड़े प्रेमसे उदर-देवकी भेंट करते हैं। फिर

भी ऐसी स्त्रियां समाजमें हजार पीछे दो चार ही होंगी जो शास्त्रानुकूल भोजन बना खिला सकती हैं। इसीलिये बहिनोंसे प्रार्थना है कि वे अपनी जिम्मेदारीके कामोंको भले प्रकारसे करें, और अपने पतियोंको भी उनसे प्रेम कराएं। क्योंकि चूल्हा चक्की और ओखली आदिके कार्योंमें प्रमाद या असावधानी करनेका पाप स्त्रियोंके सिर होता है।

यह तो सभी जानते हैं कि पुण्यका फल सुख और पापका फल दुख है। पापोंसे इस जीवनमें ही नाना कष्ट भोगना पड़ते हैं। फिर भविष्यमें नारकी या तिर्यंच होना पड़ता है, जिनमें नाना प्रकारके असह्य कष्ट भोगना होते हैं।

शास्त्रोंका कथन है कि प्रथम तो स्त्रीकी पर्याय ही निन्द्य है जो कुत्सित कर्मोंके उदयसे प्राप्त होती है, जिसने पूर्व जन्ममें मिथ्यात्वसेवन (कुगुरु, कुदेव और कुधर्मका आराधन किया हो,) अभक्ष्य भक्षण या रात्रि भोजन किया हो, अन छाना पानी पिया हो, या तीव्र मायाचार किया हो, अथवा इन्हीं जैसे खोटे खोटे कर्म-समूह उपार्जन करनेसे ही पर्याय प्राप्त होती है।

हरिवंशपुराणसे जाना जाता है कि जब नेमिनाथ भगवान अपने विवाहकालमें बारातसहित सामुराल जा रहे थे तब एक बाड़ेमें बहुतसे पशुओंको घिरे हुए देखकर सारथीसे उनके घेरे जानेका कारण पूछा। सारथीने बताया कि बारातमें आये हुए अनेक मांसाहारी राजाओंके भोजनार्थ ही यह रोके गये हैं। सारथीका उत्तर और पशुओंका क्रन्दन सुन भगवानने अवधिज्ञानके द्वारा क्षणमात्र प्रपंच जाना और

तब सोचने लगे—धिक्कार है इस वेश्यासी चचल राजलक्ष्मीको और इन रोगमे भोगोंको, जिनके कारण महान पुरुष भी निर्भय हो पापकार्योंमें दत्तचित्त हो जाते हैं। फिर विवाह कन्योंको जैमेके तमे छोड, कङ्कण आदिको तोड मरोड, गिरनार पर्वत पर जा, द्वादशानुप्रेक्षाका चिन्तवन करने लगे। जब राजुलको (राजा उग्रसेनकी पुत्री और श्रीनेमिकी अर्द्ध परिणीता पत्नीको) यह खबर मिली—जो कि अब तक नेमि जैसे सुयोग्य पतिकी प्राप्तिपर हर्षके मारे विह्वल हो रही थी—बडी ही खेद खिन्न हुई और कहने लगी, हाय ! क्षणभरमें यह क्या का क्या हो गया भगवान ! हायरे कर्मोके विचित्र चरित्र, बलिहारी तेरी ! एक तो स्त्री पर्याय पाई, फिर यह ठीक विवाहहीके समय पतिवियोग ! और सो भी थोडे समयको नही, जीवन पर्यन्तको ! अब क्यो न ऐसा उपाय करू, जिससे इस ससारके इन्द्रजालमें—इन मीठे मीठे विषरूपे प्रलोभनोसे—छूट जाऊ, ससारके जन्ममरणसे छुटकारा पाऊ। यह विचारते ही उन्होने अर्थिकाके व्रत धारण किए और कालावधि पर समाधि–मरण कर सोलहवें स्वर्गमें अच्युतेन्द्र हुई।

जो स्त्रिया श्रावककुल जैनधर्म और सब प्रकारकी सामग्री पा करके भी अपना कल्याण नही करती, किन्तु नित्य सासारिक रगडो झगडोमें ही आनद मनाया करती है, वे मानो अमृत छोड विष पीती है, उनके लिए ' खाड भरे भुस खात है ' की कहावत चरितार्थ होती है। जिस प्रकार मूर्ख मनुष्य काग उडानेके लिए चितामणि रत्नको कङ्कर समझ

फेंक देता है और फिर दुःखी होता है, वैसे ही जो स्त्रिया कुल, धर्म आदि सारी सामग्री पाकर भी अपना हित नहीं करतीं–उसका दुरुपयोग करती हैं वे उस मूर्ख मनुष्य जैसी दुःखी होती हैं, क्योंकि उक्त सामग्रीका दुरुपयोग नरकमें ले जानेवाला है। जहां उदन भदन, मारन ताडन आदि नाना कष्ट सहना होते हैं, जिनका केवल स्मरण करनेसे ही शरीरमें स्वेद हो जाता है और छाती धडकने लगती है।

हमारी बहिनोंको उचित है कि वे शास्त्रोंका पठन मनन करें। सुगुरु सुदेव और सुधर्ममें अटूट प्रीति जोडें जिसमें उनका कल्याण हो। कुगुरु, कुदेव और कुधर्मका संसर्ग तजें, क्योंकि एक तो पूर्वसंस्कारोंके कारण संसारी जीव यों ही मदोन्मत्त हो रहे हैं फिर कुगुरु आदिका संसर्ग तो उन्हें और भी दुर्दशामें कर देनेवाला है। उनके संसर्गसे हमें अपने कल्याणकी सुधि भी होनी कठिन है।

अभक्ष्य और अन्यायको छोडना भी उचित है। जो स्त्रियां मिथ्यात्वको त्याग देती हैं। रसोईकी सामग्री अपने हाथसे शोध, पानी अपनेआप छान यत्नपूर्वक रसोई करती हैं वे ही गृहस्थारम्भके पापोंसे बचती हैं।

जिस घरमें स्त्री पुरुष दोनों विवेकी हों वह घर मानों सुखागार-स्वर्ग है–पति देव और पत्नी देवी है, घर देवमन्दिर और देश स्वर्गलोक है। किन्तु जहां इसके विपरीत दोनों अथवा दोनोंमेंसे कोई एक अविवेकी है वहीं नर्ककी वेदनाएं हैं, कलह और अप्रेमके कारण वही नर्कस्थान है, उसमें

रहनेवाले नारकी हैं और यदि नारकी नहीं तो श्वान या बिल्ली जैसे तो जरूर हैं। यदि दम्पतिमेंसे कोई एक मूर्ख है तो दूसरेका आवश्यक कर्तव्य है कि उसे योग्य बनावे—मार्गपर लावे, उसे शिक्षा देकर या दिखाकर अपना सहयोगी या सहयोगिनी बनावे।

गृहस्थीरूपी गाडीमें स्त्री-पुरुषरूप दोनों पहियोंका एकसा सुदृढ़ सुन्दर और पूर्णाङ्ग होना आवश्यक है। उनमें समानता होनेपर ही गाडी वाञ्छित स्थानपर पहुंच सकती है। यदि उनमेंसे एक भी कमजोर या अयोग्य हुआ, तो गाडीका निश्चित स्थानपर पहुंचना तो दूर रहा, उसका साबित रहना भी कठिन है। जो स्त्री-पुरुष पारस्परिक प्रेममें नहीं रहते हैं वे नर्कसे भी कठिन कष्ट उठाते हैं। वे मनुष्य कभी जीवनके आनन्द नहीं उठा सकते फिर भला परमार्थ तो कर ही कैसे सकते हैं।

इस प्रकरणमें हमे यही कहना है कि हे बहिनो, तुम्हारे ही कारण जैन जाति बहुत ही नीची अवस्थामें जा पहुंची है, तुम्हीं उसे ऊपर उठा सकती हो। सीता, द्रौपदी, अञ्जना, मदोदरि, सत्यभामा, रुक्मणी, ब्राह्मी और सुन्दरी आदि कितनी ही स्त्रियोंके आदर्श तुम्हारे सामने हैं। स्वतः पवित्र बनो, दूसरोंको पवित्र बनाओ, अपने खानपानका विचार रक्खो, दूसरोंमें खान-पानका विचार कराओ, अभक्ष्य, अन्याय, मिथ्यात्व आदिको अपने अपने घरोंमेंसे निकाल भगाओ क्योंकि इनसे तुम्हारा लौकिक और पारलौकिक बिगाड हो रहा है। कितने खेदकी बात है कि जिन बातोंसे

तुम्हारा बिगाड़ हो रहा है उन्हींको तुम आनन्दपूर्वक किये जा रही हो। यदि तुम पढ़ी लिखी होती शास्त्रोंका पठन मनन करती होती, तो जान लेती कि वे स्त्रियां जिनकी कि तुम सन्तान हो, कैसी गुणवती होती थीं। एक कैकेयीको ही लो और देखो कि जिसने अनेक सुन्दर और श्रीमान राजाओंके स्वयंवरमें उपस्थित रहने पर भी [illegible] वेषमें बैठे हुए महाराज दशरथके कण्ठमें ही वरमाला पहिनाई थी। यह उसकी पुरुष-परीक्षा और प्रवीणता नहीं थी तो और क्या था? फिर अनेक राजाओंसे युद्ध करते हुए अपनी रथ हांकनेकी चतुराईसे महाराज दशरथको बचा लेना उसकी युद्ध-विद्या विशारदताका परिचायक नहीं था तो और काहेका था? यदि रानी मन्दोदरि धर्मात्मा और विचारवान न होती तो रावणको अन्याय-कार्यसे बचनेकी शिक्षा कैसे देती? यदि सती अंजना ज्ञानवान और धर्मात्मा न होती तो ठीक व्याहके समयसे ही २२ वर्ष तक अपने पति द्वारा तिरस्कार पाने पर भी उसीमें अनुरक्त कैसे रह सकती थी?

साढ़े चौबीससौ वर्ष बीते हैं जब कि राजा श्रेणिककी रानी चेलनाने अपने बौद्ध पति राजा श्रेणिकको जैनी बनाकर उन्हें सुमार्गपर लगाया था। यदि चेलना धर्मज्ञ और विद्वान न होती तो कैसे इस कठिन कार्यको कर सकती थी।

स्त्रियोंको शास्त्रोंमें कहे तथा किंचित् ऊपर कहे सद्गुणोंका धारणकर विद्यावती बनकर-आर्याओंके मार्गपर चलकर इस लोकमें सुयश और परलोकमें शुभ गति प्राप्त करनी चाहिए।

द्वितीय प्रकरण।

स्त्री शिक्षा।

जब लड़के औ लड़कियां, हों शिक्षित भरपूर।
देश जाति औ धर्मकी, रहे न उन्नति दूर॥

प्रकट रहे कि बालकोंके समान कन्याओंको भी बाल्यावस्थामें ही शिक्षा देना (पढ़ाना और गृहकार्योंका अभ्यास कराना) माता पिताका परमकर्तव्य है। मातृभाषाकी शिक्षा तो देना ही चाहिए पर इसके सिवाय राष्ट्रभाषा हिन्दी, राज्यभाषा अंग्रेजी आदिकी शिक्षा देना भी आवश्यक है। राष्ट्रभाषा हिन्दी कितनी सरल है सो बतानेकी आवश्यक्ता नहीं। पर अधिकांश जैनग्रन्थोंका अनुवाद हिन्दीमें है इसलिए ही हमारी जैन बहिनोंको इतनी हिन्दी सीखनेकी आवश्यक्ता है, जितनीसे शास्त्रोंका पूरा पूरा अर्थ समझमें आजाए कोई भाव छूटने न पाए। हिन्दीका साधारण अच्छा अभ्यास गुजराती और मराठी बाइयोंको ६ महीनेमें हो सकता है।

जो स्त्रियां पढ़ी लिखी होती हैं वे अपना जीवन आनन्दसे बिता सकती हैं; सन्तानको उत्तम गुणवान बनाकर देश, जाति और धर्म, तीनोंका कल्याण कर सकती हैं। जिस प्रकार कच्ची मिट्टीसे मनोवाञ्छित वर्तन बन सकता है उसी प्रकार बालकोंके कोमल हृदय बचपनमें मनमाने सांचेमें ढल

सकने ह, और उनके स्वभावका ढालना माताकी बुद्धिमत्ता नरी शिक्षापर अवलम्बित है। बच्चोंका अधिक समय माताके पास ही बीतता है। माताके स्वभाव, माताके धर्म कर्म, माताकी बातचीत, माताकी इच्छाए आदि आदि बच्चेपर वह प्रभाव डालती है जो हजारों गुरुओंकी शिक्षाए भी नहीं डाल सकतीं। पिताकी शिक्षा भी काम करती है पर बहुत थोडा। गुरु बेचारेको बचा उस समय मिलता है जब उसमें उसके भावी जीवनकी भलाइया और बुराइया जड पकड लेती है। माताकी शिक्षाए बच्चेपरसे उसके जीवनभर अपना प्रभाव नहीं हटाती। नेपोलियनकी माताने उसे अपनी इच्छामे ही ऐसा अनन्य वीर बनाया था। शिवाजीकी माताने अपनी ही शिक्षामे शिवाजीको इस योग्य बनाया था कि वे एक साधारण जागीरदारसे महाराजा बनगए। अकेले शिवाजी या नेपोलियन ही की बात नहीं है सैकडो आर हजारों उदाहरण ऐसे ह कि जिनमे माताने अपनी इच्छानुसार ही अपनी सन्ततिको बना लिया है। साराश यह कि शूर-कूर, विद्वान-मूर्ख जैसा भी माता चाहे अपनी सन्ततिको घड सकती है।

विद्याके सिवाय लडकियोको गृहस्थीके कामधामोंकी शिक्षा बडी ही जरूरी है, और यह शिक्षा माताए बडी ही सरलतापूर्वक दे सकती है, तथा चतुर माताए देती भी है। ऐसा न समझना चाहिए कि गृहस्थीके कामधामकी शिक्षाकी ... है ? वे तो अपने आप आते रहते है। यह

बात नहीं है। अपने आप आने रहनेमें भी यदि किसी सुव्यवस्थित पद्धतिसे सिखलाया जाता रहे तो बड़ा ही अच्छा हो, क्योंकि अनसिखुए किसी भी कार्य्यको तनिकमें बिगाड़ बैठते हैं। व्यावहारिक कार्योंको सावधानीपूर्वक पापोंसे बचाते हुए करते जाना भी एक कठिन कार्य्य है, और इसलिए उसकी शिक्षा अत्यन्त आवश्यक है। जो लड़कियां बचपनमें रसोई आदि गृहकार्य्य नहीं सीखती हैं वे ससुरालमें जाकर तिरस्कृत और दुखी होती है। कारण यह कि एक तो काम करनेका अभ्यास न होनेसे वह बोझसा प्रतीत होता है— आलस्य आता है। दूसरे काम सीखा हुआ न होनेसे बिगड़ बिगड़ जाता है। तब तिरस्कार आदि सहना पड़ता है।

कई धनिकोंकी बहू बेटियां सोचती होंगी, और सोच सकती हैं, कि जब हमें ये काम करना ही नहीं पड़ते अथवा करना ही न पड़ेंगे तब फिर इनके सीखनेकी आवश्यकता क्या? पर उन्हें सोचना चाहिए कि लक्ष्मी चचल है— बादलकी परछाँई है, आज है और कल नहीं है। दुर्भाग्य न करे कि उन्हें ऐसा दिन देखना पड़े, पर लोगोंको ऐसे दिन देखने जरूर पड़े हैं। क्या आश्चर्य कि उन्हें भी इस दुःखपूर्ण भाग्यचक्रमें पड़ना पड़े; फिर उस समय वे क्या करेंगी? जिसने निठल्ला बैठना सीखा हो उसकी इस संकटमय अवस्थामें क्या दशा होगी? या तो भूखों मरना पड़ेगा या भीख मांगनी पड़ेगी इसी लिये हमारा कहना है, कि खूब पढ़ो और खूब गृहस्थीके काम-धाम सीखो। हमारे कहनेका

कुछ यह आशय नहीं है कि धनिक होने पर भी तुम्हीं मजदूरके माफिक काम करती फिरो और नौकर चाकर मत रक्खो, परन्तु जैसी तुम्हारी अवस्था हो वैसा काम करो, परकाम करनेका अभ्यास हमेशा रक्खो। यदि पुण्यकर्मके उदयसे सपत्ति पाई है, तो नौकर चाकरोंसे यत्नाचारपूर्वक काम लो; उनपर अच्छी देखरेख रक्खो। अपने अवकाशके समयको स्वाध्याय या लिखने पढनेमें लगाओ। जो स्त्री आप कुछ काम नहीं करती और न करनेकी उत्तम रीति जानती है वह नौकर चाकरोंसे भी भले प्रकार काम नही ले सकती। नौकर चाकरोंमेंसे बहुत कम ऐसे होंगे जो अपने मनसे पूरा और अच्छा काम करें। उनपर देखरेख रखनेकी बडी आवश्यकता है। जो स्त्रियां रसोईकी क्रियामें निपुण है व कुटुम्बियोंकी प्रकृति, देश और कालके अनुसार सदा शुद्ध रसोई करती है, जिससे कुटुम्बके लोग सदा निरोगी और सुखी रहते हैं। जो स्त्रियां पाकक्रियामें प्रवीण है– प्रत्येक व्यंजन नियमानुसार बनाना जानती है वे मानो भोजन नहीं, एक पुष्टकारी औषधि खिलाकर कुटुम्बका पोषण करती हैं, इसीलिये भोजनके सम्बन्धमें कवियोंने स्त्रियोंको माता तककी उपमा दे डाली है। सच है, गुण ही सर्वत्र पूजा जाता है।

माता पिताका कर्तव्य, पुत्रियोंको लिखना पढना सिखाकर अथवा खाना बनाना सिखाकर ही पूर्ण नहीं हो जाता, किंतु उन्हें शिल्प, हस्तकला आदिके सिखानेकी भी बडी

आवश्यकता है। जिन स्त्रियोंको सीना पिरौनी तथा कसीदा आदि काढना आता है, वे मनमाना कपड़ा तैयार करके आप पहिनतीं और अपने कुटुम्बियोंको पहिनाती हैं। प्रत्येक स्त्रीको अँगरखा, पायजामा, कुरता, कोट, चोगा, घाँघरा, चोली आदि कपडोंकी काट छांट, सीना व कसीदा काढना, बेलबूटे बनाना, इजार बन्द गूथना, गुलूबन्द, मोजा बनाना और गोखरू मोडना आदि कार्य अवश्यमेव सीख लेने चाहिये। बचपनसे इन शिल्पकार्योंका अभ्यास हो जानेसे आगे बहुत लाभ और सुखकी प्राप्ति हो सकती है। जो स्त्रिया अज्ञानता वश शिल्पकारी नहीं सीखतीं उन्हें वक्त पडनेपर पिसाई, पानी भराई व कताई करके बडी कठिनाईसे अपना जीवन, निर्वाह करना पडता है। प्रत्येक स्त्री हस्तकलाके काम सीख कर रुपय डेढ रुपय रोजका काम कर सकती और अपनी गृहस्थीकी गुजर आनन्दपूर्वक चला सकती है। इसलिये द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावके अनुसार सब काम सीख लेना चाहिए ताकि वक्त पडनेपर कोई काम रुका न रहे और पराधीनता न भोगनी पडे।

जो सुशीला और भाग्यवती कन्याए, बाल्यावस्थामें खेल कूद छोड, अपने करने योग्य कामोंका अभ्यास करती हैं, उनके भविष्य-सुखमें कुछ कमी नहीं। अवकाश मिलते ही वे किसी न किसी काममें लग जाती है। काममें लगे रहनेके कारण उनका शरीर फुर्तीला और नीरोग बना रहता है।

१ सूतमें पोत मूगा आदि पिरोकर जाली पत्ता बनाना। २ कारीगरी।

कन्याओंको लडकोंकी भांति ही नहीं, किन्तु उनसे बहुत ज्यादा, अपने माता पितादि गुरुजनोंकी आज्ञा पालना चाहिए । जो पुरुष, लाड चावमें पडकर लडकियोंको मूर्ख रहने देते हैं–उन्हें पढाते लिखाते नहीं, केवल खेलने देते हैं, वे तो जो कष्ट उठाते हैं सो उठाते ही हैं, पर उन बालकोंके लिए मानो जन्मभरको दुख नाख देते हैं । अर्थात मूर्ख, ढीठ और खिलाडी लडकियां, जीवनभर कभी सुखी नहीं हो सकती । कन्याओंको उचित है कि वे अपने माता पिता, सास–ससुर, पति आदि गुरुजनोंकी आज्ञामें चलें–उनकी इच्छाके विरुद्ध कोई काम न करें और उन कामोंसे सदा दूर रहें, जिनसे उनकी तथा गुरुजनोंकी निंदा हो ।

प्यारी कन्याओ, तुम कभी बुरे आचरणवाली, हठीली, झगडालू, आलसी और खराब प्रकृतिकी लडकियोंके साथ हेल मेल, (खेल–कूद बात–चीत) तथा और भी किसी प्रकारका ससर्ग मत करो क्योंकि इससे बुद्धि बिगड जाती है । नीतिमें कहा है कि —

> सगति कीजे साधुकी, हरै और की व्याधि ।
> सगति तजिए नीचकी, आठों पहर उपाधि ॥

इसी लिये नीतिमें गुणवानकी सगति करना श्रेष्ठ कहा गया है –

> जाड्य धियो हरति सिंचति वाचि सत्य ।
> मानोन्नति दिशति पापमपाकरोति ॥
> चेत प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्ति ।
> सत्सगति कथय किं न करोति पुसाम् ॥

अर्थ—जिस सत्संगतिके प्रतापसे बुद्धिकी जडता नष्ट हो जाती है, सत्य भाषणमें रुचि होती है, सन्मानकी वृद्धि होती है, पाप दूर होकर चित्त प्रसन्न रहता है, और दशो दिशाओंमें सुकीर्ति फैलती है। तिस सत्संगकी महिमा कहा तक कही जाय। अतएव पुत्रियोंको चाहिये कि प्रात काल उठें, फिर स्नानादि क्रियाओंमे निश्चिन्त हो देवदर्शन स्वाध्याय आदिमें संलग्न होवें, पीछे रसोई आदि करें। अवकाश मिलनेपर सुशील बहू बेटियोंमें बैठ, वार्तालापका ढग और चतुराईके काम सीखनेमें समय बितावें। जो स्त्रिया अथवा लडकिया कुसंगतिमें पड जाती हैं, उनको पीछे बहुत कडुवे फल भोगने पडते हैं। जहा कहीं कुसंगतिका प्रभाव पडा और स्त्रिया निर्लज्ज हुईं। फिर उन्हें क्या कुटुम्बियो और क्या सम्बन्धियो, सभीकी दुतकार सहनी पडती है—किसी प्रकार कुत्ते बिल्लियों जैसा कष्टमय तथा निरादर पूर्ण जीवन बिताती हैं।

प्यारी भगिनियो ! तुम अपने हानि लाभका विचार सदैव किया करो। नित्य अपने आगे पीछेकी बातें सोचा करो। विचार करो कि तुम्हारे जीवनका उद्देश्य क्या है ? कभी बुरी संगतिमें मत पडो, और गृहस्थीके छोटे बडे सभी कामोंका अभ्यास करती रहो, जिसमें तुम्हें कभी शोक करनेका मौका न आए।

ऊपर कही हुई बातोंके सिवाय बालिकाओंको बालकोंकी ही भांति धर्म-शिक्षण देना आवश्यक है। उन्हें बचपनसे ही मातृभाषा समझनेके साथ ही साथ पंच नमस्कार मंत्र,

दर्शन, मंगल, पूजन और पद-विनती आदि अनेक पाठ तथा लौकिक नीतिकी शिक्षा देनी उचित है, जिसके अनुसार चलकर वे दोनों कुलोंकी कीर्ति फैलावें-किसी प्रकारसे कुमार्गमें पग न बढ़ावें।

लोकोक्ति है कि पुत्री पराये घरका धन है अर्थात् कन्याका पालन-पोषण तो माता पिता करते हैं परन्तु विवाह होजाने पर उसे कुललक्ष्मी बनकर ससुरालमें रहना पड़ता है और यह ठीक भी है। ससुरालमें ऐसा बर्ताव करना चाहिए कि जिससे माता-पिता आदि पीहरवालोंकी प्रशंसा हो। जबतक पुत्रीका विवाह नहीं होता, माता पिता उसके अधिकारी हैं, किन्तु भांवर पड़ते ही पति और पतिके माता-पिता उस वधू नाम धारिणी कन्याके अधिकारी हो जाते हैं। माता पिता या भाई आदिका कर्तव्य है, कि वे किसी योग्य, सुन्दर, सर्वांगयव, बलवान विद्वान, कुलीन और समुचित वयवाले वरके ही साथ कन्याका सम्बन्ध करें। मूर्ख, वृद्ध, बाल, रोगी, व्यसनी अथवा नपुंसक आदि वरोंके साथ कन्याका सम्बन्ध कर देनेवाले व्यक्तियोंकासा अधर्मी नर पशु दूसरा नहीं है। फिर चाहे यह विरुद्ध सम्बन्ध, पैसेके लालचसे किया जाय अथवा किसी दूसरे कारणसे।

जो निर्दोष बच्ची तुम्हें अपना जानती है, तुम्हारी आज्ञा-तोरा पालन करती है, प्रत्येक कष्टमें तुमसे आश्वासन और सहायता-पूर्ण सहायता पानेकी आशा रखती है, तुम पर अपना सारा विश्वास रखती है; हाय! क्या वही भोली

बच्ची तुम्हारे ही द्वारा दुःखसागरमें ढकेल दी जायगी ? अयोग्य पतिके गले नाथ दी जायगी ? हाय हाय ! यदि ऐसा हुआ तो कहना होगा कि तुममें मनुष्यत्व नहीं, तुम मनुष्यवर्गमें रहने योग्य नहीं । जाओ, जगलमें जाओ और सिंह भालुओंके साथ रहो–मनुष्य कहलानेका तुम्हें कोई अधिकार नहीं है ।

थोडे विचारकी बात है कि एक ऐसा आत्मा जो तुम्हारे ही जैसा सुखाभिलाषी है–तुम्हारे ही जैसा दुःखोंको देख भागता है–एक ऐसी व्यक्ति जो तुम्हें पिता माता, भाई आदि स्वर्गीय शब्दोंसे सबोधित करती है; जो तुम्हारी ही प्रतिकृति है; जो तुम्हारे ही कलेजेका टुकडा है; उसे ही हे भाइयों और हे भगिनियो ! हे नृशस माता पिताओ ! एक वृद्धके गले मढने पर, तुम पर आसमान नहीं फट पडता ! एक रोगी या नपुसकके हाथ सोंपते समय तुम पर बिजली नहीं आगिरती ! एक अयोग्य या मूर्खकी जीवन सगिनी बनानेमें तुम्हें लज्जा नहीं आती ? धिक्कार है इस लोभको; धिक्कार है इन चचल चादीके टुकडोंको; और धिक्कार है इस पैसेसे होनेवाले सुखको जातिके नेताओ ! अपनी जीभको वशमें करो; लड्डुओंका मोह छोडो और इस गुडियोंके खेलको–इस बकरियोंकी बिक्रीको बन्द करो । बहुत हुआ, ज्यादा पाप न कमाओ । कन्याएं तुम्हारे ही जैसी सैनी जीव है, उनको हृदय है । उन्हें सुख दुखका ज्ञान होना है। उन्हें आह होती है। और आहमें अचूक असर होता है । तुलसीदासजीने एक स्थानमें कहा है:—

पानी—आब—के कारण मूल्य है उसी ही स्त्रीका पातिव्रतके धर्मरूपी पानीके कारण मूल्य है। यद्यपि सती पतिव्रताओंको अपने इस उज्वल धर्मरूपी अनोखे रत्नकी रक्षाके निमित्त बड़े बड़े कष्ट सहना पड़े हैं, पर धन्य है उन देवियोंको कि जिनने सब सहा, पर अपने पातिव्रत धर्मको न छोड़ा। सीताने अपने इसी धर्मकी रक्षाके लिए कठिन वनमें जाना स्वीकार किया; रावणके बन्दीगृहके कष्टोंको भी कुछ न समझा, और अन्तमें उसी पातिव्रत–धर्मकी परीक्षा निमित्त अग्निकुंडमें प्रवेश किया। पर वाहरे शीलधर्म! तूभी क्या वस्तु है! कि देवोंने उस अग्निको सरोवर बनाके सीतादेवीका यश, चिरकालके लिए धुव कर दिया। क्या सीता जैसी सतियाँ, ससारमें पुनः पैदा हो सकती हैं? क्या वर्तमान कालकी स्त्रियोंमेंसे कोई अपनी छाती पर हाथ रखके यह कह सकती है, कि यदि कर्मयोगसे उसपर सीता ही जैसी विपत्ति पड़े तो वह अपने शील धर्मपर आच न आने देगी? मैनासुन्दरी जैसी परम पतिव्रता स्त्री सराहने योग्य है, जिसने अपने कोढी पति श्रीपाल और उनके ७०० अग-रक्षक योद्धाओंका अपने मनोयोग और अपनी अप्रतिम सेवा शुश्रूषामें कुष्ट रोग दूर किया था। सती अजनाने भी २२ वर्ष तक अपने पति द्वारा घोर तिरस्कार और कष्ट पाया, पर अपना स्नेह और धर्म जहाका तहा अटल रक्खा। अन्तमें अपनी इस कठिन तपस्याका फल पतिप्रेमके रूपमें पाया था।

कुलवती नामक एक सतीने पतिकी आज्ञामें अपना

सारा जेवर पिताके यहां रख दिया, और अनेक कष्टदायक सुदूर विदेशमें अपने पतिके साथ चली गई। आज तो कुछ विचित्र ही अवस्था है। स्त्रियां सब कुछ छोड सकती हैं पर जेवर नहीं छोड सकतीं। अनेक स्त्रियां तो अपने पतियोंको गहनोंके हेतु ऐसा तंग करती हैं कि जिसकी सीमा नहीं। फिर यह भी आशा नहीं कि वे किसी भारी कठिनाई पडने पर उस जेवरका कोई सदुपयोग करने देंगी। पति कैसी ही आपत्तिमें क्यों न फँसा हो-उसका प्राण ही क्यों न जाता हो परन्तु श्रीमतीजी अपना गहना न देंगी। उनकी इस मूर्खताको हम क्या कहें?

जो स्त्रियाँ पतिकी अपेक्षा जेवरसे अधिक प्रेम रखती हैं, उन्हें हरिश्चन्द्रकी रानी शैव्या (तारा) के जीवनचरित्रसे शिक्षा लेनी चाहिए, जिसने अपने पतिका सत्यव्रत रखनेको राज्य छोडा और पराई चाकरी की। फिर गहनोंकी तो पूछ ही क्या थी। पतिव्रता रानी चेलनाके समान कितनी स्त्रियां बुद्धिमती होंगी कि जिसने अपने बौद्ध पति राजाश्रेणिकको जैनी बनाया और उन्हें आत्मकल्याणके सन्मुख किया।

शीलव्रतके प्रभावसे सुखानन्द कुमारकी स्त्री मनोरमाकी देवोंने रक्षा की। इसी प्रकारकी अनेकों पतिव्रता-ओंका चरित्र शास्त्रोंमें लिखा है। सच है कि स्त्रियोंके सब धर्मोंमें-सब व्रतोंमें सब कर्तव्योंमें-पातिव्रत सर्व श्रेष्ठ है।

पतिके सिवाय अन्य पुरुषोंको, उनकी अवस्थानुसार पिता, भाई और पुत्र सदृश समझकर यथायोग्य वर्ताव करना

चाहिये । पातिव्रत धर्मकी महिमा शास्त्रोंमें इस प्रकार वर्णन की गई है ।

श्लोक–तोयत्यग्निरपि स्रजत्यहिरपि व्याघ्रोपि सारङ्गति ।
व्यालोऽप्यश्वति पर्वतोऽप्युपलति क्ष्वेडोपि पीयूषति ॥
विघ्नोऽप्युत्सवति प्रियत्यरिरपि क्रीडातडागत्यपाम् ।
नाथोऽपि स्वगृहत्यटव्यपि नृणा शीलप्रभावाद् ध्रुवम् ॥

अर्थ–शीलके प्रभावसे अग्नि जलके समान, साप मालाके समान, सिंह मृगके समान, कुटिल हाथी पालश घोडेके समान, विष अमृतके समान, विघ्न उत्सवके समान, शत्रु मित्रके समान, समुद्र छोटे कुडके समान और भयकर वन घरके बगीचेके समान हो जाता है ।

शीलकी प्रशसा कहातक की जाय, जो स्त्रिया बाल्य कालमे ही शीलधर्मकी रक्षा करती है उनके घर कभी कोई दुख आदि नही होता; न कोई भूत प्रेतादिक व्यन्तरोंकी बाधा होती है । पतिव्रताओंकी सन्तान रूपवान, बलवान, धार्मिक और आज्ञाकारिणी होती है । धर्मके और सब अङ्ग विना शीलके व्यर्थ हैं । जो कुसङ्गतिमें रहनेवाली मूर्ख स्त्रिया, धर्मकी महिमा न समझ, अपनी उज्जतम बट्टा लगाती हैं, वे व्यभिचारिणिया मुख देखने योग्य भी नही रहती, सूकरी कूकरीके समान मुह दिखाने योग्य नहीं हैं । जो स्त्रिया ऐसी स्त्रियोसे किसी प्रकारका सम्बन्ध रखती हैं उनका चित्त मलिन और कलुषित हो जाता है । व्यभिचारीके जप, तप, तीर्थ, व्रत, पूजा और दानादि सब निष्फल हो

जान है। ऐसा विचार कर व्यभिचारको दूरसे ही छोड़ो और शील-व्रतको तनमनसे निरतिचार पालो, जिससे तुम सामारिक सुखोंके अतिरिक्त मोक्ष सुखकी अधिकारिणी होओ।

शीलगुणके साथ ही साथ स्त्रियोंको शान्तस्वभावी और विनयी होना आवश्यक है। बुद्धिमती स्त्री वही है जो अपने सुस्वभावके कारण सारे कुटुम्बको प्रिय होती है, सबसे प्रिय वचन बोलती तथा सबका आदर करती है, किसीके कटु वचन सुननेपर भी क्रोध नहीं करती और सदा काल हँसमुख रहती है। जिससे उसकी ही नहीं किन्तु उसके माता पिताकी भी प्रशसा होती है। कोई कोई कर्कशाएँ अपने कुटुम्बसे तथा पतिसे सदा नाराज रहती है, कभी भी प्रेमसे नहीं बोलती। यदि बोलें भी तो शेरनीकी तरह खानेको दौड़ती है, परन्तु अन्य जनोसे बड़े प्रेमसे बोलती है ये लक्षण कुलटा स्त्रियोंके है। कोई कोई स्त्रिया तो ऐसी जड बुद्धि होती है, कि घरकी देवरानी, जेठानी, सास और ननँद आदिसे वैर रखती-बोलती तक नहीं, पर दूसरी अयोग्य स्त्रियोंसे बड़ा ही सम्बन्ध रखती है, ऐसी स्त्रियोंकी गृहस्थी शीघ्र ही बरबाद हो जाती है और वे जन्म भर दुख भोगती है। उन्हें चाहिए कि ससुरको पिताके और सासको माताके समान समझें। तथा अन्य कुटुम्बी जनोंको यथोचित आदर, स्नेह और विनयकी दृष्टिसे देखें। सबसे प्यारसे बोलें और उनकी उचित आज्ञाओंको, भूलकर भी न टालें। स्त्रियोंको विचारनेकी बात है कि हमारे पतिके बचपनसे ही

सास ससुर यह बात विचार कर खुश होते हैं, कि बहू आकर घरका सब काम सम्हालेगी और हमारी सेवा करेगी। इसी हेतु उन्होंने तन, मन और धन सम्बन्धी नाना कष्ट भोगकर भी तुम्हारे पतिकी सेवा की है। उन्हें यही आशा थी कि ये हमारे बुढ़ापेमें काम आवेंगे. अब उनकी गिरती अवस्थामें उनकी सेवा करनेका-उनकी की हुई सेवाके प्रति फल देनेका-अपने कर्तव्य पालनेका—अवसर आया है। तुम्हारा सौभाग्य है, कि सास ससुर आदि गुरुजनोंके कारण तुम्हारी गृहस्थी सुशोभित हो रही है। सदा हर्ष पूर्वक उनकी सेवा करो, जिससे उनका मन किंचित भी दुखी न होने पावे। तुमको इतना तो विचारना चाहिए कि तुम्हारे सास ससुर अपने लड़केको अर्थात् तुम्हारे पतिको पालनपोषण करके हृष्ट पुष्ट और पढ़ा लिखा करके गुणवान न करते तो आज तुम अपने पतिका ऐसा सुख कहांसे भोगतीं? ऐसे ही अनेक कारण हैं, जिनसे सास ससुरका तुम्हारे ऊपर बड़ा उपकार है। जो स्त्रियां ऐसे परमोपकारको भूल जाती हैं, और उनकी सेवा टहल नहीं करतीं वे दुष्टाऐं कृतघ्न और निन्दनीय हैं।

जो स्त्रियां अपने दुष्ट स्वभावके कारण गुरुजनोंकी सेवा नहीं करतीं, वृद्धावस्थामें उनका निरादर करतीं, कठोर वचन कहतीं, गालियां देतीं, दुतकारतीं, अति परिश्रमका काम लेतीं, पेटभर खानेको नहीं देतीं और जो देती भी तो रूखा सूखा और बुराभला अथवा रुपये-पैसे, कपड़े-लत्ते आदिमें तंग करती हैं, वे मूर्खाएँ वृद्ध होनेपर, अपनी बहूबेटियों द्वारा

ठीक इसी तरह दुखित और तिरस्कृत होती है। सबनन निस्सन्तान होती, और एक न एक आधिव्याधिके पा पड़ी ही रहती है अतएव प्रत्येक गृहनेवीको ऐसा वर्ता करना चाहिए, जिससे कुटुम्बकी सुख सम्पत्ति बढ़े। पर जैसी कुछ रूढ़ि चल जाती है फिर घरके छोटे बड़े स उसीके अनुसार चलने लगते हैं।

इस विषयमें एक छोटीसी कथा इस प्रकार है, कि क नन पुरनामक नगरमें एक कुटुम्ब रहता था। जिसमें सेठ धन पाल, सुभद्रा सठानी, वसुपाल पुत्र और अविनीता नामक पुत्र वधू थी। एक समय सेठ धनपालने. अपनी अति वृद्धावस्था जानकर, घरका सब कारोबार अपने पुत्र वसुपालको सौंप दिया, और आप शेष आयु निराकुलतासे धर्मध्यानपूर्वक व्य तीत करनेको उद्यत हुए। थोड़े दिन व्यतीत होते ही पुत्रवधू अविनीता अपने पतिको सर्वस्वका स्वामी समझ अभिमानमें आ गई और मूर्खतासे सास ससुरका तिरस्कार करने लगी। उन्हें रसोईमेंका बचा खुचा रूखा सूखा भोजन देने लगी मा भी मिट्टीके ठीकरोंमें आर तनिक सा। उतनेमें भोजनम उनका पेट भरेगा कि भूखे रहेंगे, इसकी उसे चिन्ता नहीं थी। उनके पहिनने, ओढने और बिछानेको भी फटे पुराने कपड़े द, नाना प्रकारके तिरस्कारपूर्ण वचन कहे, इस प्रकार बेचारे सेठ सठानी अति दुखी हो गए। वसुपाल भी माता पिताकी कभी सुधि न ले क्योंकि वह पक्का स्त्री-भक्त था। देखो तो ससारका स्वार्थ, कि जिन माता पिताने जन्म

दिया, बचपनमे पालापोषा और पढ़ा लिखाकर योग्य बनाया, उन्हींके लिए यह व्यवहार, उन्हींकी यह दशा, खेद। कितने ही पूज्य पुरुषोंकी इसी प्रकार पत्नी-सेवक कुपूतो द्वारा अवमानना हो चुकी है, हो रही है और होगी। सेठ बेचारेने तो शान्तिमय जीवन बिताना चाहा था, पर यह सारे संसारकी अशान्ति मानो उसपर टूट आई। भाग्यसे वसुपालको पुत्र-प्राप्ति हुई। पुत्रका नाम रक्खा गया गुणपाल। गुणपाल जब बड़ा हुआ तो श्रीनगरके सेठ जिनदासकी पुत्री विनयसुन्दरीके साथ विवाहा गया। सेठ जिनदास बड़े धर्मज्ञ और अनेक शास्त्रोंके मर्मज्ञ थे। उन्होने अपनी पुत्री विनयसुन्दरीको लौकिक और धार्मिक दोनों प्रकारकी शिक्षाए भली भांति दिलाई थी, जिससे उसके गुण अन्य पुत्र पुत्रियोंके लिए उपमा देने योग्य हो गए थे। जब यह विनयसुन्दरी, पतिके घर आई, तो अपनी सास अविनीताका चरित्र देख दंग हो गई, परन्तु करे क्या, प्रथम तो सासकी विनयका ध्यान, दूसरे नवागता होनेके कारण प्रत्येक बातके कहनेमें सकोच। परन्तु उसे अपने अजिया ससुर (पतिके दादा) और अजिया सास (पतिकी दादी) का दुख देखकर चैन न पड़े। वह और सभी बातोंसे चित्त हटा कर सदैव इस बातके विचारमें दत्तचित्त रहने लगी, कि किस उपायसे इनका दुख दूर करू। पढ़ी लिखी और विद्वान तो वह थी ही, एक युक्ति उसने निकाल ही ली अर्थात् वे ठीकरे जो उन वृद्ध दुखियाओंके भोजन कर लेनेपर फेंक दिए जाते थे,

जोड जोड कर घरके एक कोनेमें रखने लगी । एक दिवस अविनीताने उन घडोंके टुकडोंको इकट्ठा देख विनयसुन्दरीसे पूछा–ये तूने क्यों इकट्ठे किये हैं ? उसने विनयपूर्वक उत्तर दिया कि सासूजी ! अपने कुलकी रीति तो करनी ही पडेगी, उसीकी ये तैयारी है । आप और ससुरजी भी कभी वृद्ध होंग तब रूखा सूखा भोजन परोसनेके लिए इन ठीकरोंकी जरूरत पडेगी । इसी लिए इन्हें एकत्र कर रही हूं । सुनकर अविनीताकी आखें खुल गई । उसने उसी घडीसे सास ससुरके खान पान और पहिनने ओढनेका उत्तम प्रबन्ध कर दिया, और अपने पतिको भी उनकी सेवा करनेके लिए उत्साहित किया । फिर तो सेठ सेठानी धर्ममें तत्पर हुए । ये सब करतूते विनयसुन्दरीके सद्गुणोंकी थी, जिनके कारण कुटुम्बमें उत्पन्न हुआ एक महाकुलक्षण शान्त होगया । सेठ सेठानीने सन्तुष्ट होकर विनयसुन्दरीको लौकिक पारलौकिक सुखोंकी प्राप्तिके लिए आशीर्वाद दिया ।

स्त्रीको अपने पतिकी आज्ञाकारिणी और उसके सुख दुखकी साथिन होना योग्य है क्योंकि पतिके सुखी रहनेमें ही स्त्रीका जीवन सफल है । जिस प्रकार प्राणियोंके शरीरका मूलभूत जीव है, उसी प्रकार स्त्रीका मूलभूत पति है । बिना स्त्रीका जीवन वृथा है । इस हेतु पतिको सदैव प्रसन्न रखना स्त्रीका कर्तव्य है । स्त्रीको कभी भी पतिकी आज्ञा भग नहीं करनी चाहिए । सदैव उसके योग्य-सत्कार और विनयका ध्यान रखना चाहिए । कभी भी पतिसे बडे स्वरमें

नही बोलना चाहिए। पतिके आसनसे ऊँचे आसन पर भी कभी न बैठना चाहिए। पतिके नाराज होनेपर स्त्रीको शान्ति धारण करनी चाहिए, क्योकि स्त्रीके शात न रहनेपर कलह बहुत बढ जाता है। जब पतिका क्रोध ठडा पड जाय तब नम्रतापूर्वक ठीक ठीक बात समझावे। यदि अपना अपराध निकले तो पतिसे क्षमा मागे। जब पति दो चार मनुष्योंके पास बैठ बातचीत करता हो, तो किसी वस्तुके लानेकी बात न कहे न कहलावे। यदि किसी वस्तुकी आवश्यकता हो तो उचित समयमें अच्छे ढगसे कहे और प्रत्येक व्यवहार ऐसी नम्रता और सुशीलतासे करे कि पतिका चित्त प्रसन्न और सन्तुष्ट रहे। यदि घरमें सुयोग्य गृहणी हो तो पति बाहिरसे कैसा ही खेदखिन्न आवे, घरमें आते ही प्रसन्न हो जायगा। कोई मूर्ख स्त्रिया पतिके भोजन करते समय अपने गहनोका प्रस्ताव छेडती है, कोई किसी वस्त्र बनवानेके लिये कहती है, अथवा देवरानी-जेठानीकी घी तेल, और अनाजकी तथा न जाने कहा कहाकी जिक्र छेडती हैं कि जिससे पति भरपेट खा भी नही सकता। या तो उस समय बिलकुल मौन रहना चाहिए अथवा कोई धार्मिक या व्यावहारिक कथा छेडनी चाहिए। पर खुब स्मरण रहे, कि उस कथामें शोक, दुःख, चिन्ता घृणा आदि बिल्कुल न हो, किंतु प्रेम, धर्म, नीति, किंचित हास्य आदिकी मात्रा हो। साराश यह कि भोजन करते कराते समय पति पत्नी खुब प्रसन्न रहें। जो स्त्री अपने पतिके सुखमें सुखी और दुःखमें दुखी होती है—उसे प्राणा-

धिक समझ सेवामें तत्पर रहती है वही कुल-लक्ष्मी है-वही सती पतिव्रता है। यदि पतिको व्यापारमें हानि हुई हो या कोई दैवी आपत्ति आई हो, तो स्त्री अपने वस्त्राभूषणोंका मोह छोड दे और यदि उनसे पतिकी कीर्ति रहती हो तो रक्खे-इज्जत बचावे। अपने घरकी बात भूलकर भी बाहिर न कहे। घरमेंसे न देने योग्य ऐसी कोई चीज किसीको न दे अथवा न बेचे, जिसपर पति आदि कुटुम्बियोंके रुष्ट होनेकी सभावना हो। सदा अपने गृहस्थी सम्बन्धी हानि लाभका विचार रक्खे, क्योंकि पति कैसा ही कमाऊ क्यों न हो, यदि स्त्रियां घरको सम्हालके न चलावें तो बढती नहीं हो सकती। प्रत्येक स्त्रीका कर्तव्य है कि खर्च बडी ही सावधानी और चतुराईसे करे, सदैव समुचित बचत करती रहे। यदि दुर्भाग्यसे किसी स्त्रीको व्यसनी, आलसी, और अधर्मी आदि पति मिले तो उसे येन केन प्रकारेण सुमार्गपर लावे, परलोक व धर्ममें रुचि उत्पन्न करानेका उपाय करे। किसीको धर्म मार्गपर लगा देना बडे ही पुण्यका कार्य है, और फिर लगानेवालोंमें भी इतनी योग्यता होनी चाहिए। गरज यह कि स्त्रियोंको बचपनसे ही ज्ञान सम्पादन कर रखना चाहिए ताकि समय समय पर उसकी सहायतासे कठिनाइयों पर विजय पाती रहें।

स्त्रियोंको साधारण-जितनी कि उन्हें आवश्यक है-वैद्यक-विद्या सीखनेकी भी बडी आवश्यकता है। यदि इस ... शिक्षा स्त्रियोंने नहीं पाई है तो अपने कर्तव्योंमें।

एक सबसे बड़ा कर्तव्यपालन-सच्ची माता होना, बालबच्चोंकी रोग चर्य्या और औषधि आदि करना नहीं कर सकतीं और अपना भी रोगोंसे बचाव नहीं कर सकती। इसीलिए इस स्थानपर कुछ ध्यान देने योग्य बातें लिखी जाती हैं।

(१) गर्मी—शरीरमें अधिक तापके लगनेसे हृदय सूख जाता है, जिससे मूर्खता और दुर्बलता आदि नाना रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इसलिये बाल बच्चोंका और अपना भी गर्मीसे बचाव करना चाहिए।

(२) सर्दी—ज्वर, बात, शरीरमें दर्द, पेटमें पीड़ा इत्यादि रोग सर्दीके दोषसे होते हैं। उष्ण-देशके रहनेवालोंको बहुधा अधिक सरदी हो जाया करती है। इसका कारण यह है कि वे गर्मीसे व्याकुल हो असमयमें ही शरीरको ठंढ लगा देते हैं। अधिक परिश्रम करके आनेपर शीघ्र ही कपड़े उतार डालना, अथवा जल पी लेना, ओस पड़नेकी जगह सोना, सोते समय अधिक ठंड लगने देना, वर्षाकालमें शरीरको हवा लगने देना, ठंडमें कपड़ोंका कम पहिनना, शीत ऋतुमें ठंडे जलमें बहुत देर तक नहाते रहना आदि बातोंसे सरदी हो जाया करती है। कभी कभी इस सरदीसे ही प्राणघातक रोग हो जाते हैं अतएव इससे बचानेका सदा ध्यान रखना चाहिए।

(३) पीनेका जल—जीवन धारण करनेके लिये जल एक मुख्य पदार्थ है, बहती हुई नदी और अधिकतर गहरे कुओंका पानी साफ होता है। जलको सदा छानकर पीना

चाहिए, जिससे कूड़ा-कचरा और जीव-जन्तु आदि पीनेमें न आवें। जलके पात्रोंको सदा ढँके रक्खो। शालानेमें आकर कभी पानी मत पियो। भोजन करते समय भी अपनी तासीरके अनुसार पानी पीना चाहिए, जिससे कि पाचन क्रिया अच्छी हो। निराहार पानी पीने, खड़े खड़े पानी पीने, धूपमेंसे आकर एकदम पानी पी लेने आदिसे तिल्ली (प्लीहा) बढ़ जानेका डर रहता है और दूसरे भयानक रोग भी हो जानेका भय रहता है। इसलिए पानीकी अशुद्धता और दुरुपयोगसे बचना चाहिए।

(४) भोजन—यह मनुष्यके जीवनका आधार है अतः इस पर विशेष ध्यान देनेकी आवश्यकता है। भोजनका स्थान साफ हो, उसमें कीड़े मकोड़ोंसे बचानेके लिए एक कपड़ा बधा हो, प्रकाश और वायुके लिए पूरा पूरा प्रबंध हो। सामग्री ऋतुके अनुसार और ताजी हो। भोजन करनेके पीछे ही नहा लेना भयानक रोग उत्पन्न करता है। भोजन करते ही काममें लग जाना भी कुछ हानिकारक है। भोजनके पीछे किंचित विश्राम लेना-दायें-बायें करवटसे लेटना चाहिए, परन्तु यह विश्राम पन्द्रह बीस मिनिटसे अधिक न हो अथवा नींदके रूपमें भी न हो। फिर परिश्रममें लगना चाहिए। कच्चा और बासी भोजन करनेसे पाचनशक्ति घटती और उदररोग पैदा होते हैं, बुद्धि भी न्यून होती है। भोजन उतना ही बनाना चाहिए, जितना आवश्यक हो और बासी न बचे।

(५) वायु—प्रत्येक मकानमें वायु और प्रकाशका पूरा

प्रबन्ध हो। पाखाना, सोने और खानेके घरसे दूर हो तथा उसके झाडने आदिका पूरा प्रबन्ध हो। गोशाला भी हमारे सोनेके घरमे जुदी हो। सोनेके घरमे ज्यादा और व्यर्थका सामान नहीं रहना चाहिए। घरके आसपास कोई ऐसी मैली नाली या गली-कूचा न होना चाहिए जो मैला रहता हो। मकान प्रति दिन पूरा पूरा झाडाफूका जाना चाहिए। खिड-कियोंका भी यथोचित प्रबन्ध हो।

(६) निद्रा-दिनभरके परिश्रमकी थकावटको दूर कर-नेके लिए विश्राम लेना आवश्यक है और यह बात निद्रासे भली भाति पूर्ण हो जाती है। यथोचित निद्रा आनेसे बहु-तसे रोग नही होने पाते। रातमे बहुत जागने या भली भाति निद्रा न लेनेसे शरीर अकडने लगता है, देह टूटती और आलस्य आता है, तथा काम करनेमें भी जी नहीं लगता। अतः योग्य रीतिसे निद्रा लेना जरूरी है। सीले स्थानमें अथवा बिना कुछ ओढे सोना हानिकारक है। पौ फटनेके पहिले ही शय्या त्याग देना आरोग्यप्रद है।

(७) व्यायाम याने कसरत-अङ्गप्रत्यङ्गोको चलाये विना शरीरमें फुर्ती नहीं आती। बच्चोंको भी भले प्रकार कूदने और खेलने देना चाहिए; यही उनका व्यायाम है। दिनरात उन्हें गोदीमें लिए रहना जान बुझकर बीमार बनाना है। स्त्रियोंको पुरुषोंकी नाई दंड पेलना और बैठकें लगाना आवश्यक नहीं है, किंतु घरका झाडना बुहारना, पानी भरना, कपडे छाटना (धोना), पीसना आदि ही उनका

व्यायाम है। जो स्त्रिया घरके इन कामोंके करनेसे वचित रहती हैं वे ही प्राय: अधिक रोगी हुआ करती हैं और थोड़े समय जीती हैं। कामकाज करनेवाली स्त्रिया नीरोग रहती है, इसलिये उन्हें इस जीवनमें सुख मिलता है; पर लोकको भी नीरोग रहनेके कारण वे सुखकी कमाई कर सकती हैं।

कुछ साधारण और शीघ्र शीघ्र हो जानेवाले रोग और उनकी औषधिया भी जान लेना स्त्रियोको जरूरी है। बचपनमें बच्चोको दात, ज्वर और खासी आदि हो जाया करती हैं तथा यदि उपाय न किया जाय तो एक बड़े रोगमें बदल जाती है। मूर्ख माताए भूत-प्रेत या नजर आदिके भ्रममें पड़, कभी कभी अपने बच्चोसे ही हाथ धो बैठती हैं। कुछ रोगोंकी पहिचान आर उनकी औषधिया नीचे लिखी जाती हैं।

सासकी पहिचान—जब सास लेते समय बालककी नाकमे सुर जल्दी जल्दी चक्कर फैलता हो तो जान लो कि इसकी छातीमें दर्द है। छातीमें दर्द होनेसे आखें पथराने लगती हैं, सास लेनेमें पीड़ा होती और पेट फूल जाता है। होठ पीले पड़ जाते तथा मुह लाल और सफेद पड़ जाता है। ऐसी अवस्थामें घबराना नहीं चाहिए, किंतु योग्य वैद्य, डाक्टर या हकीमसे इलाज कराना चाहिए।

आखोकी पहिचान—जब शरीरकी हालत अच्छी होती है तो आखें साफ रहती हैं। जब सोरी बदले या आख

मैली रहे तो जानना चाहिए कि बच्चेके सिरमें, बीमारी होनेवाली है।

नींदका न आना—जब बालकको ठीक ठीक नींद न आवे, तब जानना चाहिए कि उसका स्वास्थ्य बिगडा हुआ है। इसी प्रकार जब बालक मामूलीसे ज्यादह रोवे; तो जानना चाहिए कि बालक बीमार पडनेवाला है।

खाँसी—बालकको जब सरदी होती है तब वह बार बार खाँसता है और उसकी आवाज बैठ जाती है। खामनेसे कभी कभी पसली भी चल निकलती है।

माता या चेचक—बच्चोंको चेचक निकलनेके पहिले टीका लगवाना याने गोदवाना आवश्यक है।

जो लोग लाड-प्यार या मूर्खतासे टीका नहीं लगवाते वे पीछे पछताते हैं। माता निकलनेके दो तीन दिन पहिलेसे ज्वर आता है, फिर घबराहट और बेहोशी होती है, तीसरे दिन बदन लाल पड जाता और माथेपर खसखस जैसे छोटे छोटे दाने (फुन्सिया) दिखाई देते हैं। यह दशा उस चेचककी है जो टीका लगानेके भी पीछे कभी कभी निकलती है। यदि टीका न लगा हो तो चेचक बडे जोरसे निकलती है। मूर्ख स्त्रिया इसका मूल कारण तो जानती नहीं; समझती है कि यह शीतला देवीका कोप है, और इस लिए शीतला देवीकी पूजा-अर्चा किया करती है, जिससे कोई लाभ नही होता। माताकी बीमारी, बच्चोंमें माताके पेटकी गर्मीसे होती है। माताके पेटकी गर्मी ही कारण पाकर

इस विकारके रूपमें निकलती है इसीलिये इसका 'माताकी बीमारी' पड़ा है। तर और शीतल भोजन देनेमें शीघ्र और सरलता पूर्वक यह विकार निकल जाता है-शान्त हो जाता है। बुद्धिमान स्त्रियां देवियोंके मंदीरमें नहीं दोड़ी फिरतीं, किन्तु समझ बूझकर इलाज करती हैं और रोग शीघ्र ही आराम कर लेती हैं।

यदि बालककी ढूँढी (ढूँडी-नाभि) पक जाय तो नीवेका (नीपक्का) तेल लगावे या हल्दी, लोध (पसारियोंके यहां मिलनेवाली एक औषधि) और नीमके फूल, बारीक पीसकर लेप करे। यदि बालक दूध न पीता हो, तो पहिले यह जानना आवश्यक है कि किस पीड़ामें दूध पीना बंद हुआ है? जिस अङ्ग पर बालक बार बार हाथ फेरता हो, उसी स्थान पर दर्द समझकर शीघ्र ही उसका योग्य इलाज करना चाहिए। यदि हँसली चढ़ गई हो तो दाईको बुलाकर मलवा देनेमें आराम हो जाता है। यदि कागला बढ़ गया हो तो चूल्हेकी राख और काली मिरच पीसकर, अगुली पर लगा चतुराईके साथ उसे दबा देवे।

कभी कभी बालककी आखें गर्मी, सर्दी या दांत निकलनेके सबब दुखने लगती हैं, तब रसोत (पसारियोंके यहां मिलनेवाली एक औषधि) पानीमें घिसकर आख पर लेप करे। आखमें भीतर भी एक बूंद डाले। सम्भवत तो इसी लगानेमें बालककी आखें अच्छी हो जायँगी। अथवा पीली मिट्टीकी टिकियाँ बनाकर पड़ेपर रख दे, और रातको सोते

सम्य आन पर बाय दे । इस रीतिसे आखोंका दुखना शीघ्र आराम हो जाता है ।

यदि बालकको खांसी हो जाय तो सोते वक्त उसके मुहमें अनारका छिल्का रख दे, अथवा भूभलमें सिके हुए-भुने हुए-बहेडेके छिल्केका चूर्ण बालकको चटावे। यदि बालकको पेशाबके साथ खून आता हो तो पाषाण भेद और साठा पानीमें पीसकर पिलावे। यदि दस्तमें आँव आती हो तो वायविडंग, पीपल, अजमोद, कुडकुडेके बीज और सफेद जीरा पानीमें पीस मिश्री मिलाकर पीनेको दे। यदि आँव खूनके साथ आती हो तो कच्ची पक्की सौंफ पीसे और उसमें कच्ची खाट मिलाकर चूरणकी भांति खानेको दे अथवा सोंठका मुरब्बा खिलावे। यदि बालकको ज्वर आता हो तो ऐसी दवा देनी चाहिए, जिससे कुछ दस्त होकर पेटका विकार निकल जावे।

दांतोको सहज रीतिसे निकालनेका यह उपाय है कि धावडेके फूल और पीपलको आवलेके रसमें मिलाकर बच्चेके मसूडापर मले। यदि पेशाब बन्द होगई हो तो ढाकके (पलाश—छेवला) फूलोंको बालकके पेडूपर लेप कर दे। जहा तक होसके बालकोंको जल्दी पचनेवाला ताजा भोजन देना चाहिए। जिससे ये निरोग रहें। यदि कोई रोग भी हो जाय तो धीरता पूर्वक आप ही व किसी अच्छे वैद्य द्वारा दवाई करे, क्योंकि मूर्खता वश अधीर होने और धूर्त ढोंगियोंके मन्त्र जन्त्रोंमें पड़नेसे हानिके सिवा कुछ भी लाभ नहीं

है। इसलिए प्रत्येक बातकी वास्तविकता जाननेके लिए सदैव अच्छी अच्छी पुस्तकें पढ़ती रहनी चाहिए। इससे सांसारिक सुखोंके सिवाय पारमार्थिक सुखोंकी प्राप्ति होती है। यहां प्रसंगवश यह बात भी कह देना योग्य है कि कोई स्त्रियां बिना आगा पीछा सोचे ही दो-दो चार-चार वर्षों अवधितक व्रत आदि करनेकी प्रतिज्ञा कर लेती हैं। ऐसी ही अवस्थामें यदि गर्भ रह जाता है तो गर्भको इन व्रत उपवासोंमें बड़ा ही कष्ट होता है। बेचारी बड़े धर्म-संकटमें पड़ जाती हैं-प्रतिज्ञा भी तोड़ नहीं सकतीं और गर्भका कष्ट भी देख नहीं सकतीं। इसलिये उतावलीमें हो इसे कोई प्रतिज्ञा नहीं करनी चाहिए! द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, संहनन व शक्ति देखकर ही कोई प्रतिज्ञा करे। कुछ मेरा यह कहना नहीं है कि व्रत उपवास करो ही मत। नहीं, करो, पर भले प्रकार आगा पीछा सोचकर।

तृतीय प्रकरण ।
स्त्रियोंकी नित्यचर्य्या ।

दोहा—गृही आविकारी क्रिया, चहिए यत्नाचार ।
तासौं वर्णन करत कछु, निरखि श्रावकाचार ॥
जल छानन, तजि निशि–असन, श्रावक चिन्ह जु तीन ।
प्रति दिन दर्शन जो करे सो जैनी परवीन ॥

स्त्रियोंको उचित है कि सूर्योदयके पूर्व शय्यासे उठ, पंच परमेष्ठीका स्मरण करें । विस्तरोंको सम्भाल यथास्थान रख मल्मूत्र आदि बाधाओंसे निश्चिन्त होवें । अनेक आलसी स्त्रियां दिन चढे उठतीं, और विस्तरोंको ज्योंके त्यों छोडकर और और काम धंधोंमें लग जाती हैं । यह बडी अज्ञानता है । स्त्रियोंको पतिसे पीछे सोना और उससे पहिले उठना चाहिए । गावके बाहर दीर्घबाधाको जाना आरोग्यप्रद और अहिंसाका कार्य है । दीर्घशंकाको कपडे बदल कर जाना चाहिए, क्योंकि अपवित्र हाथों व अपवित्र स्थानके स्पर्श हो जानेका भय रहता है । शौचादिकका पानी छना हुआ होना चाहिए । जो वर्तन शौच करनेका हो उसे अन्य कामोंमें प्रयोगमें न लावे । शौचके निमित्त जितना पानी आवश्यक हो उतना ही लेना चाहिए । बहुतसे लोग जलकाय-जीवोंकी हिंसाके ख्यालसे पानी थोडा लेते हैं, कि जिससे अपवित्रता ज्योंकी त्यों बनी रहती है । ध्यान रखनेकी बात है कि, गृहस्थके लिए स्थावर कायकी हिंसाका सर्वथा त्याग करना

अशक्य है, परन्तु इसका मतलब कुछ यह नहीं है कि व्यर्थ ही स्थावर कायिक जीवोंकी हिंसा की जाय। शौचके अनंतर अशोस्थानको जलके सिवाय प्राशुक और शुद्ध मिट्टी अथवा भस्मसे धोकर शुद्ध करना भी अच्छा है। इसी प्रकार लघु शंकाके पीछे इन्द्री व हाथ पाव धोना आवश्यक है।

शौचिक-क्रियासे निपट कर घरको कोमल बुहारीसे बुहारना चाहिए। जितने भी जीव बुहारने पर निकलें एक सुरक्षित स्थानमें रख दिए जावें। खजूरकी कांटेदार बुहारी छोटे छोटे जीवोंका बहुत ही संहार करती है, या तो उससे बुहारा ही न जावे, और जो बुहारा भी जावे, तो उसकी एक एक पत्तीको फाड़कर चार चार व छः भाग कर दिए जावें जिससे बुहारी कोमल हो जावे। ऊनकी अथवा अम्बाड़ीकी बुहारी बड़ी ही भली होती है। पश्चात् और भी जो ऐसे काम हो उन्हें दया धर्मका ख्याल करते हुए पूरे करके, छने हुए प्रामाणिक शुद्ध-जलसे स्नान करें। बहुतसे मनुष्य और स्त्रिया विषयसेवन, लघुशंका और दीर्घशंकाके पीछे स्नान और दन्तधावन नहीं करती यह कितनी मलिनताकी बात है। हा यह जरूर है कि इन कामोंमें अनछने पानीका उपयोग न करना चाहिये। जल छाननेकी आज्ञा दूसरे धर्मोंमें भी पाई जाती है।*

* दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं, वस्त्रपूतं पिबेज्जलं ।
सत्यपूतं वदेद्वाक्यं, मनःपूतं समाचरेत् ॥
संवत्सरेण यत्पापं, कुरुते मत्स्यबंधकः ।
एकाहेन तदाप्नोति, अपूतजलसंग्रही ॥ (स्मृति)

इस प्रकार पवित्र हो अपनी योग्यतानुसार मोटा या पतला, महँगा या सस्ता, स्वदेशी कपडा जो कि शुद्ध और साफ हो, पहिनकर माशुक द्रव्य-लोग, बादाम, चावल आदि लेकर जिन मंदिर जावे। जिस ग्राममें जिन मंदिर नहीं उसमें जैनियोंको वास करना उचित नहीं। यदि यात्रा या देशाटनके समय दर्शन न मिलें तो अशुभका उदय विचार एकरस छोड भोजन करें, पर जो ग्राममें जिन मंदिरके होते हुए दर्शन पूजन आदि नहीं करती वे अनुचित करती हैं। प्रत्येक व्यक्तिको भोजनोंके पहिले भगवानके दर्शन और आत्मचिन्तन करनेकी आवश्यकता है। मंदिरको जाते समय कीडी मकोडी, मल, मूत्र आदिको बचाता हुआ चले, जिससे जीवोंकी रक्षाके साथ साथ अपनी रक्षा और पवित्रता रहे। चमडेके जूते पहिन मंदिरको जाना बुरा है। अच्छा हो, यदि उस समय जूते पहिने ही न जाएँ, और जो पहिने भी जाएँ तो कपडेके। मंदिरमें प्रवेश करनेके पहिले जूतोंको (यदि पहिने हों) उतार, पैरोंको जलसे खूब धोना उचित है। फिर सब प्रकारकी उद्धतता और संकल्प विकल्प छोड जय-जिनेन्द्र शब्द करती हुई प्रतिमाजीके सन्मुख जावे और जयनिस्सहि, जयनिस्सहि, जयनिस्सहिका उच्चारण कर श्रीजीको तीन बार नमस्कार करे [जयनिस्सहि के उच्चारणका कारण ऐसा बताया है कि, यदि कोई देव उस समय दर्शनको आया हो तो एक ओर हटजाए, तुम्हारा व उसका काम अविच्छिन्न रूपसे होता रहे—किसीको बाधा न हो।]

श्रीजीके सन्मुख खडी हो, विचारे "मैं आत्म स्वरूप बतानेवाले जिनेन्द्रका दर्शन कर रही हूं। इन्होंने किस प्रकार कष्ट सहन किये हैं! कैसे कैसे कर्मोंपर विजय पाई है! कब वह दिन आयगा जब मैं ठीक उसी मार्गपर चलने लगूँगी जिस पर जिनेन्द्र गए हैं। मैं कैसे कैसे पाप कर रही हूं, भूल रही हूं, भटक रही हूं; पराएको अपना समझ रही हूं, और स्वप्नको सच्चा मान रही हूं।"

फिर कोई सुन्दर पद, जो तुम्हे तुम्हारी वास्तविकताकी ओर ले जाय, कहो। और भावोंकी निर्मलतासहित स्तोत्र पढ़ती, मस्तक नवाती, द्रव्य, क्षेत्र, काल भावके अनुसार एक द्रव्य या अष्ट-द्रव्यसे भगवानकी भक्ति पूर्वक पूजन करो। फिर भगवानकी तीन प्रदक्षिणा * (भगवानकी दाहिनी ओरसे प्रदक्षिणा दी जाती है) देवे। प्रदक्षिणा देते हुए प्रत्येक दिशामें तीन आवर्त[1] और एक शिरोनति[2] करे और पश्चात् यह पाठ पढ़े।

श्लोक —दर्शनं देवदेवस्य, दर्शनं पापनाशनम्।
दर्शनं स्वर्गसोपानं, दर्शनं मोक्षसाधनम्॥ १ ॥

अर्थ—देवोंके देवका दर्शन पापोंका नाश करनेवाला, स्वर्गकी सीढ़ी और मोक्षका साधन है।

दर्शनेन जिनेन्द्राणां, साधूनां वन्दनेन च।
न चिरं तिष्ठते पापं, छिद्रहस्ते यथोदकम्॥ २ ॥

---

* प्रदक्षिणा देते हुए हाथ जोड़े रहना चाहिए।

१ जोड़े हुए हाथ घुमानेको आवर्त कहते हैं। २ जोड़े हुए हाथों-पर मस्तक झुकाकर रखनेको शिरोनति कहते हैं।

अर्थ-श्री जिनेन्द्रके दर्शन करनेसे और साधुओंकी वन्दना करनेसे पाप बहुत दिनोतक नही ठहरते। जैसे छिद्र-वाले हाथमें पानी नहीं ठहरता।

नीतरागमुख दृष्ट्वा, पद्मरागसमप्रभम् ।
अनेकजन्मकृत पाप, दर्शनेन विनश्यति ॥ ३ ॥

पद्मरागके समान शोभित श्री वीतराग भगवानका मुख देखकर अनेक जन्मोंके किये हुए पाप नाश हो जाते हैं।

दर्शन जिनसूर्यस्य ससारध्वान्तनाशनम् ।
बोधन चित्तपद्मस्य समस्तार्थप्रकाशनम् ॥ ४ ॥

सूर्यके समान श्री जिनेन्द्रके दर्शनसे सासारिक अधकार नाश होता है। चित्त रूपी कमल फूलता है और सर्व पदार्थ प्रकाशमें आते हैं अर्थात् ज्ञात होते हैं।

दर्शन जिनचद्रस्य सद्धर्मामृतवर्षणम् ।
जन्मदाहविनाशाय, वर्धन सुखवारिधे ॥ ५ ॥

चन्द्रमाके समान श्री जिनेन्द्र देवका दर्शन करनेसे सत्-धर्म्मामृतकी वर्षा होती है, जन्म जन्मकी दाह ठडी होती और सुख समुद्रकी वृद्धि होती है।

जीवादितत्व प्रतिपादकाय सम्यक्त्वमुख्याष्टगुणार्णवाय ।
प्रशातरूपाय दिगम्बराय, देवाधिदेवाय नमो जिनाय ॥ ६ ॥

जो जीवादि सात तत्त्वोंको बतानेवाले, सम्यक्त्व आदि आठ गुणोंके समुद्र, शान्त तथा दिगम्बर रूप हैं; उन देवा-धिदेव श्री जिनेन्द्र भगवानको नमस्कार हो।

भव विकट वनमें कर्म वैरी, ज्ञान धन मेरो हर्यो।
तव इष्ट भूले भ्रष्ट ह्वो, नष्ट गति धरतो फिर्यो ॥ ३ ॥
धनि घडी अरु धनि दिवस यो ही, धनि जनम मेरो भयो।
अब भाग मेरो उदय आयो दरश प्रभुको लख लयो ॥ ४ ॥
छवि वीतरागी नग्नमुद्रा, दृष्टि नासापै धरैं।
वसु प्रातिहार्य अनन्त गुणयुत, कोटि रवि छविको हरैं ॥ ५ ॥
अब मिटो तिमिर मिथ्यात मेरो, उदय रवि आतम भयो।
मो हर्ष उर ऐसो भयो मनु रङ्क चिन्तामणि लयो ॥ ६ ॥
मैं हाथ जोडि नवाय मस्तक, वीनऊँ तुम चरण जी।
परमोत्कृष्ट त्रिलोकपति जिन, सुनहु तारन तरन जी ॥ ७ ॥
जाचूं नहीं सुरवास पुनि नरराज परिजन साथ जी।
बुध जाचहूं तुम भक्ति भव भव, दीजिए शिवनाथजी ॥ ८ ॥

इस भांति स्तुतिकर तीन आवर्त, एक शिरोनति और अष्टांग नमस्कार पूर्वक दण्डवत करे। फिर नीचेका श्लोक बोलते हुए गन्धोदक—चरणोदक—हृदय, नेत्र और मस्तकमें लगावे।

श्लोक—निर्मलं निर्मलीकरणं पवित्रं पापनाशनं।
जिनचरणोदकं वन्दे, अष्टकर्मविनाशकं ॥

सोरठा—जिन तन परम पवित्र परसभई जगशुचि करन।
सो धारा मम नित्त, पाप हरौ पावन करौ ॥

गन्धोदक लगा अपना सौभाग्य समझे, परन्तु लेते समय इस बातका ध्यान रखे कि गन्धोदक एक या दो अंगुलियोंमें लिया जाय, जिससे वह जमीन पर न गिरने पावे

ओर अशुद्ध हाथमे न लिया जाय । गन्धोदकके पास जलका एक कटोरा अवश्य रक्खा जाय, जिसमे गन्धोदक लेनेके बाद अँगुलियाँ धो ली जायँ । इतना कार्य कर लेनेके पीछे अवकाशके अनुसार एकाग्रचित्त करके जाप्य, सामायिक ओर स्वाध्याय आदि करे । स्वाध्याय धर्मका मूल और शान्ति देनेवाला है । ध्यानमे जो आनन्द है वह किसी भी सांसारिक वासना या पदार्थमें नही है । शास्त्रो–पुस्तकोके विषयमें एक लेखकने लिखा है–वे (शास्त्र) हम बिना कुछ वेतन लिये पढाते है । बिना नोर किये आर भले पर बिना डट डिये हमें सिखाते हैं । रात दिन जब चाहे तब हमे पढानेको तैयार रहते है । हमारी मूर्खतापर वे न तो हसते और न चार जनोमे हमारी दिल्लगी उडाते है । फिर भला बताओ, शास्त्रो जैसे गुरु ओर पुस्तकालयो जैसे स्कूल क्या ओर होगे ? जो मनुष्य धर्मको जानना चाहे; व निर्दोष और सर्वज्ञ वीतराग कथित धर्मका अवलोकन करे । स्वाध्याय सब तपोंका मुख्य एक श्रेष्ठ सत्कर्म है ।

मंदिरमे विकथा–संसारसम्बन्धी चर्चा, लेन देन, हसी, झगडा आदि–नही करना चाहिए, क्योंकि धर्म–स्थानोंमें ऐसा करनेसे विशेष पाप बन्ध होता ह ।

श्रावकाचार आदि आचारग्रथोंमें जहा तहा ८४ आसादनोंका वर्णन किया गया है । धर्मायतनमें जाकर उनका लगाना उचित नही है । मदिरमें सबसे मैत्रीभाव रक्खे । अपने दुर्भावोंसे उस काल बिल्कुल छुट्टी पा जावे ।

+बालकोंको शुद्ध-मलमूत्रादिसे निश्चिन्त-कराके ले जाय और मंदिरमें भी इस बातका ध्यान रक्खे कि वह किसी प्रकारकी अपवित्रता या दूसरोंके धर्म-साधनमें कोई विघ्न करने पावे।

धर्म साधनसे निपटकर स्त्रीको गृहस्थीके कामोंमें लगना चाहिये, क्योंकि पुरुषके लिये धर्म साधन और आजीविका ये दो मुख्य कार्य हैं—

पहला बढ़तर माजनी तिनमें दो सरदार।
एक और आजीविका, एक धर्म उद्धार॥ (कोई नीतिकार)

और स्त्रीके लिये धर्मसाधन गृह-व्यवस्था और सन्तानपालन मुख्य कर्म हैं।

स्त्रियोंको रसोई शुद्ध बनानी चाहिये। रसोई बनाते समय नीचे लिखी बातोंपर ध्यान देना चाहिए।

चौकेकी क्रिया—पवित्र भोजन होनेसे मन और बुद्धि पवित्र होती है तथा अच्छे कार्योंकी ओर लगती है। इन्हींसे मुख्य धर्म ठहरता है जो मन, वचन और तनसे धर्माचरण करते हैं। धर्माचरणोंके लिये आवश्यक है कि हम अपना खान पान शुद्ध रक्खें—चौके चूल्हे पर खूब ध्यान दें। जल, रसोईकी बर्तनादि सामग्री, ईंधन और रसोईका स्थान इन चारों पर ध्यान देना ' चौका ' कहलाता है।

+ बालक ५ वर्षके हो जानेपर मंदिरमें ले जाकर भगवानको नमस्कार करावे। रोज दर्शन और णमोकार मंत्र उच्चारे। अज्ञान अवस्थामें बहुत छुटपनमें लेजाना ठीक नहीं है।

जल-कुआँ, तालाब, नदी आदि पवित्र जलस्थानोंसे भली भांति छानकर लाया जावे, छाननेका वस्त्र उज्वल, गाढा ३६×२८ अंगुल हो । इस छन्नेको दुहरा करके छानना चाहिए । यदि बर्तनोंका मुँह बडा हो, तो उसी परिमाणसे छन्नेको भी बडा रखना चाहिए । (प्रत्येक अवस्थामें दुहरा करनेपर भी उन्ना बर्तनके मुखसे तीन गुना हो) सदा पवित्र और मँजे हुए बर्तनोंमें धीरेधीरे पानी छाना जावे । अनछने पानीकी एक बूंद भी व्यर्थ न गिरे और छने हुए जलमें भी वह न मिलने पावे । अपने हाथसे पानी भरकर लाना सर्वोत्तम है । यदि ऐसा न हो सके तो मदिरा, मांसके त्यागी किसी उच्चकुलके विश्वस्त व्यक्तिसे भराना उचित है । पानी छाननेके बाद जीवानी-बिलछानी-उस जलस्थानमें ही यत्नपूर्वक क्षेपण करना कराना चाहिये, जिसमेंसे कि पानी लाया गया हो । यदि पानी कुएँसे लाया गया हो तो जीवानी कडीदार लोटेसे डाली जाय, जिससे वह बीचहीमें न रहकर पानीतक पहुंच जाय । जो लोग जीवानीको यत्नपूर्वक उसी जलस्थानमें क्षेपण नहीं करते, जिसमेंसे कि जल भरा हो तो उससे जल छाननेका उद्देश्य अधूरा ही रह जाता है-उन जल जीवोंकी रक्षा नहीं होती ।

छने हुए जलमें लोंग, हरडें और लकडीकी राख आदि द्रव्य शास्त्रोक्त प्रमाणसे डाल देनेपर उसके रस, गंध, वर्ण और स्पर्श आदि बदल जाते हैं, तथा जल कायके जीव चय जाते हैं, और नहीं होती । इस भांति शुद्ध

(प्रासुक) हुए जलकी मर्यादा २ पहरकी है, साधारण गर्म जलकी ४ पहरकी और उबाले हुए याने अदहन समान गर्म किये जलकी मर्यादा ८ पहरकी है। प्रासुक जल मर्यादाके भीतर ही उपयोगमें लाया जा सकता है। मर्यादाके पश्चात् वह किसी भी कामका नहीं रहता।

दुःखकी बात है कि जैनियोंमें जल छाननेकी विधिका आजकल प्रायः लोपसा हो गया है पानी छाननेके लिये पतला पुरानी धोतीका टुकड़ा जाति बिरादरीके भयसे रखते हैं, जिसमेंसे छोटे बड़े सभी जीव, बराबर निकल जाते हैं। भला इस ढोंगमें क्या लाभ है? अनछना पानी पीनेसे अन्यायके दोषके सिवाय शरीरमें अनेक रोग भी घर कर लेते हैं। यही कारण है कि संसारके सभी विद्वान क्या जैन और क्या अजैन और क्या डाक्टर, वैद्य हकीम वैज्ञानिक आदि पानीको छानकर पीनेकी सम्मति देते हैं। हमारे भारतीय वैद्यक शास्त्र तो न जाने कबसे पानी छानकर पीनेकी आज्ञा देते चले आये हैं। लोकोक्ति है कि "जल पीजे छानकर गुरु कीजे जानकर" इस उक्तिसे भी जल छानके जल पीनेकी ही पुष्टि मिलती है। यूरोपियन जातियां यद्यपि अहिंसाका विचार नहीं रखतीं, तो भी स्वास्थ्यके विचारसे पानीको भले तरहसे साफ करके पीती हैं।

पानीके छाननेका काम स्त्रियोंकी थोड़ीसी सावधानीसे अच्छी तरहसे होते रह सकता है। सबसे पहले घरमें दो तीन

ढँके रखना चाहिए । पुराने छन्नोंमें पानी बराबर छानते ही रहना ठीक नहीं । उन्हें अलग कर देना चाहिए । सबसे अच्छी बात तो यह है कि जलस्थानमें ही पानी छानकर लाया जावे, और फिर जिस समय पीनेकी इच्छा हो छान-कर पिया जाता रहे । शाम सुबह सब पानी छानकर एक चौड़े बरतनमें जीवानी एकत्र करे तथा यत्नाचार पूर्वक उसे जलस्थानमें पहुचावे । स्मरण रहे, पानी उबालकर और पीछे ठंडा करके पीनेसे शरीरकी नीरोगता रहती है । यही प्राशुक जल पीनेका लाभ है ।

भोजनसामग्री—अन्न अवीध (विना घुना) होना चाहिए । उसका साफ करना और पीसना उजेलेमें होना चाहिए । पीसते समय चक्कीको, कूटते समय ओखलीको और इसी भांति दूसरे दूसरे पदार्थोंको पीसने कूटनेके पहिले, अच्छी भांति देख लो, साफ करलो । उनमें कोई जीव न रह जाय । चक्की आदिसे आटा आदि निकाल लेनेपर भी उसमें आटे वगैरहका कुछ अंश लगा ही रह जाता है उसे कोमल बुहारीसे निकाल डालना चाहिए । कितने ही लोग अनाजको धोकर खाते हैं, यह बात भी बहुत अच्छी है, परन्तु छने हुए पानीसे ही धोना चाहिए । बहुतसी स्त्रियां दाल चावल आदिको बहुत पहिलेसे बीन रखती हैं, और रसोईके समय तनिक भी नहीं शोधतीं । विचारती हैं कि शुधे शुधाए तो रखे हैं, पर यह उनकी बड़ी भूल है । उस समय भी जरूर शोधना चाहिए ।

द्विदल आदि २२ अभक्ष्य* और पांच उदम्बर यानी बड़, पीपल, ऊमर, कठूमर पाकर फल तथा ३ मकार यानी मद्य, मांस और मधुको महा पाप समझ करके कभी भूल कर भी नहीं खाना चाहिए।

रसोई बनानेके पहिले सर्व भोज्य पदार्थ लेकर शोधे तथा ठीक अन्दाज करके फिर रसोई बनावे। प्रथम ही चौकेमें जल लेजाकर रक्खे और उसे प्रासुक करले क्योंकि कच्चे जलकी मर्यादा ३/४ पौन घड़ीकी है और रसोईमें २ या ३ घंटेमें लगते हैं। सारांश यह कि पानी प्रासुक किये बिना काम नहीं चल सकता। आटा छानकर—झाड़कर—शुद्ध स्वच्छ गीले कपड़ेमें ढँक दे। आटा छानते समय हाथकी अंगुलियां आदि उतार देना चाहिए। फिर अपनी योग्यतानुसार सरस स्वच्छ भोजन बनावे। रसोईको कभी बिना ढँकी न रक्खे क्योंकि या तो भाफसे अथवा प्रेमसे ही कई कारणोंसे जीव मरकर रसोईमें गिर जायँगे। भोजन सदैव खूब देख भाल और पीस पीस चबा चबाके करना चाहिए। रात्रिमें भोजन बनाना खाना बुरा है। रात्रि भोजनके विरुद्ध मार्कण्डेयपुराणमें एक जगह लिखा है:—

---

* २२ अभक्ष्यके नाम—१ बड़ा २ द्विदल (अर्थात् दही या कच्चे दूधके साथ दुफाडिया (द्विदल) अनाज खाना) ३ बहुबीज फल ४ ओला ५ रात्रि भोजन ६ कन्दमूल ७ मांस ८ मधु ९ मदिरा १० अमली ११ माखन १२ विष १३ अचार (अथाना) १४ पापर फल १५ बेंगनफल १६ गूलरफल १७ कठूमर फल १८ पाकर फल १९ अजान फल २० तुच्छ फल २१ तुषार (बर्फ) २२ चलित रस।

अस्तंगते दिवानाथे तोयं रुधिरमुच्यते,
अन्नं मांससमं प्रोक्तं मार्कण्डेन महर्षिणा।
रक्तीभवन्ति तोयानि अन्नानि पिशितानि च
रात्रौ भोजनसक्तस्य ग्रासे तन्मांसभक्षणम्॥

भावार्थ यह है कि रात्रिभोजन मांस भक्षण और रात्रि जलपान रक्तपानके समान है।

ऐसा विचार करके किसी अथवा धर्मात्मा पुरुषको (जो उस समय आश्रयमें प्राप्त हो जावे) भोजन कराके यदि न हो तो अपने ही घरके योग्य पुरुषको भोजन कराके आप स्वयं जीमे। भोजनके समय तो अन्य दुःखित भुक्षित और दीनादिको एवं त्यागियोंको भोजन कराना ही, बड़े कल्याणका कारण है। धन्य हैं वे व्यक्ति जो प्रति दिन इसी प्रकार दूसरोंको भोजन कराके भोजन करते हैं। पुरुषोंके भोजनोपरान्त स्त्रियां भोजन करें। भोजनके पीछे ही बर्तन साफ कर डालना और चौका धो डालना चाहिए जूठे बर्तन अधिक देरतक पड़े रहनेसे उनमें सम्मूर्छन जीवोंकी उत्पत्ति हो जाती है। भिनभिनाती हुई मक्खियां इस जूठ पानीमें (धोवनमें) गिरती-मरती हैं जिससे हिंसाका दोष लगता है। अथवा अपवित्र कुत्ते बिल्ली उन्हें चाटकर अपवित्र कर देते हैं।

लड्डू, बाबर, घेवर, पूरी, ख्वारमेव आदि पक्की चीजोंकी मर्यादा-जिनमें पानीका अंश थोड़ा होता है-८ पहरकी है। पुआ, पूड़ी, भजिया आदिकी मर्यादा अधिक जल

होनेके कारण ४ पहरकी है। खाजा, कढ़ी, खिचड़ी आदि कच्ची रसोईकी मर्यादा २ पहरकी है। जिस रसोईमें पानी न पड़ा हो जैसे मगद आदिकी मर्यादा आटेके बराबर जानो। दूध दुहकर तत्काल उसके औंटा लेनेसे शुद्ध रहता है। इस दूधकी मर्यादा ८ पहरकी है। गर्म पानी डालकर तैयार की हुई छाछकी मर्यादा ४ पहरकी है। कच्चे पानीसे बनाये हुए मट्ठे (छाछ) की मर्यादा कच्चे पानीके बराबर, २ घड़ीकी (¾ पौन घंटेकी) है। प्रासुक (गर्म) किये हुए दूधमें जामन देनेसे बने हुए दहीकी मर्यादा ८ पहरकी है। दही जमानेका सर्वोत्तम उपाय यह है कि, कलदार रुपयेको सामान्य रीतिसे गर्म करके प्रासुक दूधमें डाल देनेसे ४ पहरके भीतर उसका दही जम जाता है।

इनके सिवाय अन्य पदार्थोंकी मर्यादा शास्त्रोंसे या क्रियाकोषसे जानना चाहिए। स्मरण रखना चाहिए कि, मर्यादाके पश्चात् प्रत्येक पदार्थमें त्रस जीवोंकी उत्पत्ति हो जाती है। बिना औटाए हुए दही अथवा छाछके साथ, द्विदल (विदल) अन्न खानेसे अनेक रोग उत्पन्न होते हैं। बिगड़े हुए स्वादवाले पदार्थ खानेसे स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। इसीलिए हमारे आचार्योंने हमें ताजा और शुद्ध भोजन करनेकी आज्ञा दी है, जिससे कि हम मोटे-ताजे और नीरोग रहें तथा लौकिक और धार्मिक कार्योंको भलीभांति साधित कर सकें।

गाय, भैंस, कुत्ते या बिल्लीके छुए हुए न हों। पाखानेको लिये जानेवाले लोटेसे यदि अन्य बर्तन छुजाएँ या शूद्रादि उनमें खाया पिया हो, तो बर्तनोंको अग्निमें डालकर शुद्ध कर लेना चाहिए। हां यह बात ठीक है कि यदि खान पीन समय कुत्ता बिल्ली आदि आजाए, तो उन्हें दयापूर्वक कुछ भोजन डाल देना चाहिये। बाजारू दुकानों पर बाजारू मिठाई खाना, जूते चढ़ाए भोजन या मिठाई पा जाना, कांच और चीनीके बर्तनोंमें जूठ इत्यादिका कोई दोष न समझना बड़ा ही हानिकर है। इससे हम अपनी आरोग्यता चाहने वालोंको तो अवश्य ही इन बातोंमें बचना चाहिए।

चौका-रसोईका स्थान अर्थात् चौका ऐसे स्थानमें हो जहां कि कूकर, बिल्ली आदि प्रवेश न कर सकें, और कीड़ा मकोड़ी न ठहर सकें, तथा जाला न बना सकें। जहांकी धरती सूखी हो, और हर जन्तुम सुखी रह सके। जहां भली भांति प्रकाश आता हो। रसोईके स्थानकी जहां सीमा बँधी हो। ऊपर चंदोवा इस प्रकार टँगा हो, जिससे ऊपरसे जीव जन्तु और कूड़ा करकट न गिरने पावे। [चंदोवा, चक्की, उखली, घिनोची (पनिंडा) आदि आदि स्थानों पर भी रखना आवश्यक है] चौकेको नित्य कोमल बुहारीसे[1] बुहारकर तथा देखभालके, चूल्हेकी राख निकालके, मिट्टी मिले प्रासुक जलमें पोतना उचित है। चौका रातको न लगाया जाय,

१ ऐसी बुहारियां बम्बईमें चार चार छः छः आनेको अच्छी मिल जाती है जो कि टिकाऊ भी होती है।

क्योंकि उनमें अनेक प्राणियोंका नाश होना सम्भव है।
चौका अवश्य लगाना चाहिए। अर्थात आशय यह कि,
भोजनसामग्री, भोजनस्थान आदिमें जितनी पवित्रता रक्खी
जायगी, परिणाम-भाव-उतने ही पवित्र होंगे और उसमें
शरीर और मन उतना ही पुष्ट तथा स्वस्थ (अच्छा) रहेगा।
अनेक घरोंमें चौका न लगाया जाकर पानी छिड़क दिया
जाता है, अनेक घरोंमें एक ओर रसोई बना करती है और
दूसरी ओर राख आदि कूड़ा करकट लगा रहता है। यह
बड़ा ही घृणास्पद म्लेच्छ व्यवहार है। ऐसा न करना चाहिए
चौका जिस कपड़ेसे लगाया जाय उसे नित्य ही निचोड़कर
सुखा डालना चाहिए। बहुतेरी स्त्रियां उसे वैसा
मिट्टी पानीमें भीगा रख देती हैं जिससे उसमें बहुतसे कीड़े
पड़ जाते हैं। अगले दिन उसी कपड़ेसे (पोतेसे) फिर चौका
लगा दिया जाता है और वे जीव बेचारे परलोक सिधारते हैं।

गोबरसे चौका लगाना ठीक नहीं है, क्योंकि गोबरका
चौका देरसे सूखता है। और दूसरे उसमें कीड़े पड़नेकी
सम्भावना रहती है। इस तरह यत्नाचारसे चौका लगा, स्नान
कर, शुद्ध स्वच्छ वस्त्र पहिने। फिर रसोईका सामान शोध
चौकेमें रसोई बनावे। पुरुष भी हाथ पांव धो स्वच्छ
वस्त्र पहिन भोजनके निमित्त चौकेमें जावें। यदि चौकेमें
बिना नहाये धोए और बिना स्वच्छ कपड़े पहिने चला गया
जावे तो शूद्रों और हममें अन्तर ही क्या रहे। स्वच्छता—
पवित्रता—हर जगह अच्छी और लाभप्रद है। गृहस्थी यदि

बलवान भी हो तो भी कुटुम्बके भोजन योग्य रसोई घरकी स्त्रियोंमें ही बनवानी चाहिए। क्योंकि रसोई बनानेवालेके चित्तमें प्रेम व भक्तिभाव होना चाहिए जो नौकरोंमें होना सम्भव नहीं है। स्वयं रसोई बनाई जाय तभी चौकेकी शुद्धता रह सकती है। रसोई बनाना स्त्रियोंका एक व्यायाम भी है।

ईंधन—अर्थात् और निर्जन्तु सूखी लकड़ीका हो। गोबर छगनी या कण्डा यदि हो तो एक बार साफ कर लिया जाय—पोंछ लिया जावे तो अहिंसा धर्मकी अधिक पालना हो। खास करके बरसातमें, ईंधनमें असंख्य जीव हो जाते हैं इसलिये बरसातमें तो बहुत सावधानी करके ईंधन जलाना चाहिए। अच्छा हो यदि कोयला ही जलाया जावे, उसीमें रसोई बनावें। गोबरके कंडे (छाने) जलाना तो जैनियोंको सर्वथा अनुचित है क्योंकि इनके जलानेमें ही हजारों कीड़ोंका सत्यानाश हो जाता है।

इसी तरह गृहस्थीके अन्य अन्य कार्य भी बहुत विचार पूर्वक करना चाहिये। सिर साफ करनेके पीछे जो जूं आदि निकलती हैं, उन्हें मारना न चाहिये, किन्तु बाहर किसी ठंडी छायादार स्थानमें सावधानी पूर्वक रख देना चाहिए ऐसा ही व्यवहार अनाजसे निकले हुए जन्तुओंके साथ करना चाहिये। उन्हें भी कुछ अनाज साथ किसी पात्रमें रखके उपयुक्त स्थानमें रख दें।

नहाने धोनेका पानी ऐसे स्थानमें डाला जाना चाहिए तथा पेशाब भी ऐसे स्थानमें की जानी चाहिए जहां जल्दी

मख जाय, क्योंकि किसी भी जगह बहुत गीलापन होनेसे कीडे उत्पन्न हो जाते, दुर्गन्धि फैलती तथा नाना प्रकारके रोग उत्पन्न होने लगते हैं। पृथ्वी, जल अग्नि, वायु और वनस्पति इन पांच स्थावरोंकी रक्षाके लिए आवश्यकतासे अधिक इनका व्यर्थ उपयोग मत करो—ऐसा कि बेकाम पानी डाल दिया जाय, या व्यर्थ धरती खोदी जाय, अथवा यों ही इधर उधर आग जलाई जाय, झाड, फल फूल आदि तोडे जायँ, बिना किसी उपयोगके दिया जलाया जाय, ये अथवा इन ही जैसे कृत्य अनर्थ-दण्ड-पापके मूल हैं। और गृहस्थका मुख्य धर्म यही है कि आवश्यकतानुकूल ही स्थावर काय काममें लावे। त्रस कायकी संकल्पी हिंसाको छोड, और भी क्रिया अर्थात व्यापार-धंधे सम्बन्धी हिंसामें यत्नाचार पूर्वक काम करे। जो इससे विपरीत चलते हैं वे निस्सन्तान होते हैं, रोगी और दुखी होते हैं। हिंसाके कटुक फल भुगतते हैं। इस धर्मनीति पर चलना चाहिए जिससे हिंसा टले, दयाधर्म पले, शरीर और कुटुम्बकी रक्षा हो तथा लौकिक सुखोंकी प्राप्ति हो।
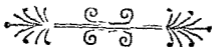
चतुर्थ प्रकरण।

ऋतुक्रिया-विचार।

जो नारी ऋतुक्रियामें, वरते सविधि समान।
तासे वर सन्तान है, सुख-यश-बुद्धि निधान॥

स्त्रियोंके उदरमें एक डिंब-कोष रहता है, जिसकी गर्भ स्थलीके रक्तमें प्रतिमास अंडेके समान एक छोटा प्रकार उत्पन्न होता है। क्रमानुसार महीना पूर्ण होनेपर यह अंडा फटकर गर्भस्थलीके ऊपर नाभिसे जा मिलता है, और रक्तादि, मूत्र-मार्ग द्वारा बाहर निकल आता है। इस प्रकार किसीके दो तीन दिन और किसीके पांच सात दिनतक निकलता रहता है, ऐसी क्रियायुक्त स्त्रीको पुष्पवती या रजस्वला कहते हैं। मासिक धर्म होनेका नियम ३ दिनका है इससे कम या अधिक, रोगका कारण होता है। इन दिनोंमें स्त्री अस्पर्श्य कही गई है। इन दिनो उसे ग्रहस्थीके प्रत्येक कार्यसे अलग रहना चाहिये। किसी भी वस्तु और बाल बच्चेको न छुए। एकान्तमें एक जगह बैठे। कितने अफसोसकी बात है कि आजकल रजस्वला स्त्रियां पानी भरना, पीसना, बर्तन मलना आदि अनेक काम करती हैं। पर यह वैद्यक शास्त्रके विरुद्ध है। वैद्यकशास्त्र बतलाता है कि मासिक समय स्त्रीको सुस्थ और शांत भावसे रहना चाहिये,

स्त्रीका भी मुँह नहीं देखना चाहिए, क्योंकि विचारों, कल्पनाओं और दृश्योंका प्रभाव आगे होने होनेवाली सन्तान-पर अभीसे पड़ चलता है। पापियोंकी छाया पड जाने अथवा चित्त चलायमान होजानेसे भावी सन्तानपर बहुत बुरा असर पडता है। इसी सम्बन्धमें एक मनोहर कहानी नीचे लिखी जाती है।

एक ग्राममें ४ अंधे रहते थे। वे चारों ही गुणवान और आपसमें मित्र थे। उनने विचारा कि 'गांवका जोगी अन्य गांवका सिद्ध' हो न हो, चलो अपन चारों, कहीं बाहर चलें, जिसमें आजीविका चले और गुण विख्यात हो। उनमेंसे पहिला रत्नपरीक्षक, दूसरा अश्वपरीक्षक, तीसरा स्त्री परीक्षक, और चौथा पुरुष परीक्षक था। इन चारोंने चल दिया और एक बड़ी राजधानीमें पहुचे। वहांके राजासे मिल कर आजीविका-प्राप्तिकी प्रार्थना की। राजाने पूछा कि परदेशी सूरदासो! तुममेंसे प्रत्येकमें क्या क्या गुण है सो बताओ। प्रत्येकके अपना अपना गुण निवेदन करने पर राजाने उनमेसे प्रत्येकको १ सेर आटा, १ छटाक दाल, १ तोला घी और १ तोला नमक प्रतिदिन दिए जानेकी आज्ञा दे दी। चारो सूरदास खाते पीते आनन्द करते, वहीं राजधानीमें रहने लगे।

सयोगसे एक दिन एक जौहरी बहुतसे जवाहरात लेकर राजधानीमें आया। तब राजाने रत्नोंकी परीक्षा करनेके लिए, उस रत्नपरीक्षक सूरदासको बुलाकर कुछ अच्छे रत्न

चतुर्थ प्रकरण।

ऋतुक्रिया-विचार।

जो नारी ऋतुक्रियामें, वरते सविधि सयान।
ताके वर सन्तान है, सुरा-यश-बुद्धि निधान॥

स्त्रियोंके उदरमें एक डिंब-कोष रहता है, जिसकी चर्म-स्थलीके रक्तमें प्रतिमास अंडेके समान एक छोटा पदार्थ उत्पन्न होता है। क्रमानुसार महीना पूर्ण होनेपर यह अंडा फटकर गर्भस्थलीके ऊपर नाभिमें जा मिलता है, और रक्तादि, मूत्र-मार्ग द्वारा बाहर निकल आता है। इस प्रकार किसीके दो तीन दिन और किसीके पांच सात दिनतक निकलता रहता है, ऐसी क्रियायुक्त स्त्रीको पुष्पवती या रजस्वला कहते हैं। मासिक धर्म होनेका नियम ३ दिनका है इससे कम या अधिक, रोगका कारण होता है। इन दिनोंमें स्त्री अस्पर्श्य कही गई है। इन दिनो उसे ग्रहस्थीके प्रत्येक कार्यमें अलग रहना चाहिये। किसी भी वस्तु और बाल बचेको न छुए। एकान्तमें एक जगह बैठे। कितने अफसोसकी बात है कि आजकल रजस्वला स्त्रिया पानी भरना, पीसना, बर्तन मलना आदि अनेक काम करती हैं। पर यह वैद्यक शास्त्रके विरुद्ध है। वैद्यकशास्त्र बतलाता है कि मासिक धर्मके समय स्त्रीको सुस्थ और शांत भावसे रहना चाहिये,

किसीका भी मुँह नहीं देखना चाहिए; क्योंकि विचारों, घटनाओं और दृश्योंका प्रभाव आगे होने होनेवाली सन्तान-पर अभीसे पड चलता है। पापियोंकी छाया पड जाने अथवा चित्त चलायमान होजानेसे भावी सन्तानपर बहुत बुरा असर पडता है। इसी सम्बन्धमें एक मनोहर कहानी नीचे लिखी जाती है।

एक ग्राममें ४ अंधे रहते थे। वे चारों ही गुणवान और आपसमें मित्र थे। उनने विचारा कि 'गावका जोगी अन्य गावका सिद्ध' हो न हो, चलो अपन चारों, कहीं बाहर चलें, जिसमें आजीविका चले और गुण विख्यात हो। उनमेंसे पहिला रत्नपरीक्षक, दूसरा अश्वपरीक्षक, तीसरा स्त्री परीक्षक, और चौथा पुरुष परीक्षक था। उन चारोंने चल दिया और एक बडी राजधानीमें पहुचे। वहाके राजासे मिलकर आजीविका-प्राप्तिकी प्रार्थना की। राजाने पूछा कि परदेशी सूरदासो! तुममेंसे प्रत्येकमें क्या क्या गुण हैं सो बताओ। प्रत्येकके अपना अपना गुण निवेदन करने पर राजाने उनमेंसे प्रत्येकको १ सेर आटा, १ छटाक दाल, १ तोला घी और १ तोला नमक प्रतिदिन दिए जानेकी आज्ञा दे दी। चारो सूरदास खाते पीते आनन्द करते, वहीं राजधानीमें रहने लगे।

सयोगसे एक दिन एक जोहरी बहुतसे जवाहरात लेकर राजधानीमें आया। तब राजाने रत्नोंकी परीक्षा करनेके लिए, उस रत्नपरीक्षक सूरदासको बुलाकर कुछ अच्छे रत्न

ले देनेको कहा। उस सूरदासने कुछ चोखे-उत्तम-रत्न ढूंढ कर राजाको दिये और कहा कि ये चोखे हैं। यदि ये खोटे होंगे तो इन्हें घनकी चोट दिलवाकर देख लीजिये, फूट जायँगे। असली-पक्के-रत्न होंगे तो कभी भी फूटनेके नहीं। सूरदासके कहे अनुसार रत्नोंकी परीक्षा की गई और वे चोखे पक्के-रत्न सिद्ध हुए। तब राजाने उस रत्नपरीक्षक सूरदासको बहुतसा पुरस्कार दिया और घीकी मात्रा बढ़ा दी।

इसी प्रकार एक बार एक अच्छा पुष्ट और सुन्दर घोड़ा राजाने अश्व परीक्षक सूरदासको सौंपा और परीक्षा करनेको कहा। सूरदासने घोड़ेके अंगोपाङ्ग टटोल कर कहा राजन! इस सब सुलक्षणोंवाले घोड़ेमें, एक यह कुलक्षण है कि जलमें प्रवेश करते ही यह बैठ जायगा। राजाने परीक्षा की तो सचमुच जलमें धँसते ही घोड़ा बैठ गया। परीक्षा कर चुकने पर राजाने सूरदाससे पूछा कि तुमने घोड़ेका यह दोष कैसे जान लिया? तब सूरदासने कहा कि जिस तरह वैद्य नाड़ी देखकर रोग जान लेते हैं, उसी तरह इसके अंग और नाड़ियां टटोल कर मैंने इसका यह दोष जाना। बात यह है कि, इसके पक्ष मुझे एक ऐसी बात मिली जो अपने समागमसे बहुत योगी थी और तब मैंने सोचने विचारने पता लगाया कि इस घोड़ेकी माँने भैंसका दूध पिया है, जिसकी गर्मीके वश इस घोड़ेमें अगम भी है। राजाने पहिले सूरदासकी तरह इसे भी पुरस्कार आदि दिए।

एक दिन राजाने तीसरे स्त्री परीक्षक सूरदासको बुलाकर कहा कि, आज तुम महलोंमें जाकर मेरी रानीकी परीक्षा करो और बिलकुल सच सच हाल मुझसे आकर कहो। पश्चात् राजाने रानीको खबर करवाई कि, थोडी ही देरमें एक सूरदासजी तुम्हारे महलमें आनेवाले हैं, सो तुम सावधानीसे उनका आदर–सत्कार करना। रानीने खबर पाते ही अपना खूब शृंगार किया और ऐसा शृंगार किया कि जिससे बढकर हो न सके। शृंगार करके शय्यापर बैठती ही जाती थी कि सूरदासजी आ पहुचे। रानी हाथमें कुछ भेट ले खासती खँखारती हुई, जल्दी जल्दी धमधमाती द्वार तक पहुची। सूरदास इन ऊपरी बातो हीसे उसकी परीक्षा करके राजाके पास लौट गया और राजाके पूछने पर कहा—अपराध क्षमा हो, आपकी रानी किसी ओछे घरकी बेटी जान पडती है यदि इनकी माता क्षत्राणी है तो परपुरुषरता है, जो पिता क्षत्रिय है, तो यह किसी नीच जातिकी बेटी है। सुनते ही राजाने सूरदासको तो घर जानेकी आज्ञा दी और आप शीघ्र ही रानीके पास पहुचे। बडी खिन्नतामें बैठे।

रानीने पूछा, महाराज! उदास कैसे? राजाने कहा, मै जो बात पूछता हूं उसे बिल्कुल सच सच बताना, कुछ छुपाना मत। किसी भांतिका डर मत खाना, क्योंकि इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं है। पूछना यह है कि, तुम किसकी पुत्री हो? अपने माता पिताका वास्तविक परिचय दो। रानीने राजाके चरणोंपर गिरके कहा, महाराज! मैं रानीकी कूखमें

हू। चाहे मारिये, चाहे पालिये। आपके साथ व्याह होनेका कारण यह है कि, जिस कन्यासे आपकी मगनी हुई थी, वह ठीक विवाहके समय मर गई। तब इस मृत्युकी बातको छिपाकर मेरे साथ आपकी शादी कर दी गई। राजाने सुना, और दरबारमें आया। सूरदासको बुलाकर पूछा कि सूरदास तुमने कैसे जाना कि मेरी रानीके जाति-वंशमें कोई अन्तर है। सूरदास बोला-महाराज आदमीकी योग्यता हैसियत-दो बातोंमें जानी जाती है। एक तो बोलनेसे, और दूसरे शरीरकी क्रियामें अर्थात् चलने, फिरने, उठने और बैठनेमें तथा वस्त्राभूषण आदि ठाटबाटमें। सो ही किसी कविने कहा है कि "भले बुरे सब एकसे, जौलों बोलत नाहिं" और "बड़े बड़ाई ना तज, बड़ो न बोलें बोल॥" मैंने भी रानीकी परीक्षा बोलने और चलने फिरनेमें की है। जो बड़े घरकी बेटियां हैं, जिन्हें मायके (पीहर) और ससुरालकी शरम है, माता पिताकी और सास ससुरकी प्रतिष्ठाका ध्यान है, तथा जो अपयश और पापोंसे डरती हैं, वे चलने फिरने बैठने उठने आदिमें मर्यादाका उल्लंघन नहीं करती हैं। छिछलापन-उथलापन-नीचताका द्योतक है।

कुटिल स्त्रियोंके विषयमें कहा है —

१—अपने पिताके वासमें, जहं तहं फिरें मतिमन्द ज्यों,
 डोलती घर घर फिरें, बिन हेतु ही स्वच्छन्द त्यों,
२—जहं होय मेला तथा कौतुक, देखनेको जावहीं,
 पर पुरुष बैठे होय जहंते, होय तहं ठाडी सही,

३—बहु भ्रमन पसँद विदेश जाको, एकली जन तह फिरैं,
व्यभिचारिणी जे नारि कुटिला, प्रीति तिनह्तें करैं,
४—नहिं लाज काहूकी करैं, निज पति निरादर जासु के,
जे नारि कुल्टा पापिनी ये जान लक्षण तासु के,
५—क्षण माहि रोवें औ हँसैं, उन्मत्त मदमें नित रहें,
नहिं होय तोषित भोगसूं, नित कामकी बाधा दहें,
६—चरती मटकती चारु आतुर, स्वाद जिव्हाका चहें,
ऐसी कुनारी स्वन नाशे यथारु जैनी कहें,

हे राजन् ! कुलवन्ती भार्या छुपाने योग्य अगोको सदा छुपाये रखती है। नीची दृष्टि करके चलती है। किसीसे भी, चाहे जैसा सभाषण नहीं करने लगती है। कुटुम्ब भरसे प्रीति, और जीव मात्रपर करुणाभाव रखती है। दुखित भुखितका दुख दूर करती है। धर्मात्मा जीवोंमे पवित्र प्रेम रखती है। देव, धर्म और सच्चे गुरुकी भक्ति करती है। देवदर्शन, स्वाध्याय आदि धर्मकार्यमे अनुरक्त रहती है। प्रत्येक सामान स्वच्छ सुव्यवस्थित रखती और प्रत्येक काम पूरा करती है। मकान भी बिल्कुल स्वच्छ और सजीला रखती है। रसोई सुस्वादु और शुद्धतापूर्वक करती है। ऐसी कुलवन्ती भार्या होनेसे घर स्वर्ग बन जाता है। थोडीसी भी आयसे [आमदनीसे] ऐसी गृहस्थीका निर्वाह बडे सुचारु रूपसे बडे अच्छे ढंगसे होता जाता है और लोग कहते हैं कि यह स्त्री कैसा सती लक्ष्मी है। यही गृहस्थी सुखी है।

बहुतेरी श्रीमतियां ऐसी होती हैं कि, जहां इन्होंने कुम्भीमें पैर रखा कि गृहस्थी तीन तेरह हुई। जहां तहां सामान बिखरा पड़ा रहता है, मकान मैला होता है, प्रत्येक कामम अव्रापन रहता है और प्रत्येक बातमें अव्यवस्था (ढील पोल) होती है। उनकी मूर्खतासे घरमें फूट और नानाप्रकारके रोग फैलते हैं। (मैलापन और बुरी रसोई तथा चित्तकी अस्वस्थता ही रोगके कारण हैं।) जहां आलसी, दरिद्र और मूर्ख स्त्रियां हुई वहां शोक, दुःख और अकीर्तिका घर ही समझिए। ऐसी स्त्रियोंकी सन्तति भी इन्हीं जैसे कुलक्षणोंसे भूषित होती है। बुद्धि, विद्या, धर्म, क्षमा, सत्य, शील और संयम आदिसे तो वह बिलकुल कोरी होती है। इन सब व्यसनोंमेंसे कोई एक अथवा अनेक व्यसन, रोग और अनेक कुलक्षण अवश्य ही उसमें जन्म सिद्ध होते हैं। वह अल्पायु होती है। सो महाराज, घबराइये नहीं। इन्हीं सब बातों पर और बहुत कुछ अनुभव पर यह स्त्रीपरीक्षा निर्भर है और इसी तरह मैंने भी परीक्षा की है। क्षमा कीजिए।

राजाने इसे भी पुरस्कार दिया और तीसरी माला पहना दी। राजाके मनमें बड़ा कौतूहल हुआ और उसने चौथे रत्नागरको बुलाकर कहा—सरदार! तुमने कहा था कि तुम्हें पुरुष-परीक्षा अच्छी आती है। अच्छा, निस्सन्देह है, मेरी सच्ची परीक्षा करो। रत्नागर बोला—महाराज यदि आप पीछे क्रोध और [illegible] न हो तो दया

कीजिए; मुझसे परीक्षा न कराइये और यदि जितना कहूं उतने ही पर सन्तोष कर लेना चाहें, तो आप ही स्या कहूं, मैंने बहुत पहिलेसे आपकी परीक्षा कर रक्खी है, सो सुनिए। राजाने इस बातको स्वीकार करके कहा कि अच्छा कहो। तब मृगध्वजने कहा, महाराज! आपकी आज्ञानुसार निवेदन है कि, आपका स्वभाव ऋतुधर्मचारिणियोंका सा है। सारी सभासमेत राजा बड़ा ही चकित हुआ। राजा विचारवान था। सोचने लगा, क्या मेरी माता दुराचारिणी है? सच है, अग्नि, जल, नदी, सर्प सिंह स्त्री, रागी, चोर और जार आदि कुटिल स्वभाववालोंका विश्वास क्या? इसीलिए तो किसी कविने कहा है —

तीनों ही त्रिलोक बीच, जेती हैं वनस्पती,
ऐसनी मझारे तारी, करके लखत है।
तीनों ही त्रिलोक बीच, जेते है समुद्र द्वीप,
पर्वतकी ग्याही कर जानत सगत है॥
तीनों ही त्रिलोक बीच, धरी है जो जेती भूमि,
ताहीके मझार जाके, पग ले रगत है।
शारदा सहसकर करके लिखत सदा
कामिनी चरित्र तोऊ, लिखै न परत है॥

राजा इसी भांति सोचता विरक्त सभासे उठ गया और राजमाताके पास पहुंचा। बड़ी नम्रतासे कहने लगा कि, माँ! भवितव्य बलवान है। बड़े बड़े देव, चक्रवर्ती आदि उसके चक्रमें आ जाते हैं। इसी भाँति यदि तुम भी

आ गई हो तो कोई चिन्ता नहीं। सत्य कहना, कि मेरे स्वभावमें क्षत्रियोचित उदारतादि गुण क्या नहीं हैं? माताने कहा कि पुत्र बात यह है कि, एक दिन मैं ऊपर बैठी बैठी अपना शृंगार कर रही थी। उसी समय कल्याणराय सेठ अपने घर पर खड़ा खड़ा एक सुन्दर गगरी गा रहा था। अकस्मात् नेत्रोंने दोनोंको देखा, और अवसर पा दुर्भाव नाने जन्म लिया। ठीक उसी समयसे तुम्हारे पितासे मैं गर्भवती हुई। सो और तो कुछ नहीं है केवल उस दुर्भाव नासे ही तुमपर यह प्रभाव पड़ा है, क्योंकि ठीक उसी दिन मैं मासिक धर्मसे निश्चिन्त हुई थी। पुत्र! तुम विश्वास करो। मैं किये हुए पापोंको छुपाकर चोर अपराधिनी नहीं हुआ चाहती। जो बात थी मैंने स्पष्ट कह दी है।

राजा वहांसे दरबारमें आया। चारों सरदारोंका अच्छा वेतन बांधकर सभामें रक्खा। सोचना चाहिए कि माताके विचारोंका और विशेष कर ऋतुकालके विचारोंका सन्तति पर कितना असर पड़ता है। कि कहां तो रणशूर तपस्वी और दान वीर क्षत्रियका पुत्र और कहां क्षुद्रहृदय अनुदार और स्वार्थी वणिकोंकासा स्वभाव?

ऋतुकालमें कैसी सावधानी रखनी चाहिए सो संक्षेपमें नीचे लिखी जाती है।

ऋतुधर्म होना प्राकृतिक नियम है, और यह स्त्रियोंको हर महीने हुआ करता है। कभी कभी यह कुछ जल्दी और कभी कुछ देरीसे भी होता है परन्तु जब नियमित रूपसे

यह कुछ अधिक कम दिनोंमें (अर्थात् पन्द्रह दिन या बीस, दिनमें) अथवा अधिक ऊंचे दिनोंमें (अर्थात् डेढ़ डेढ़ दो दो महीने या उससे भी ज्यादा दिनोंमें) आने लगे तब समझना चाहिये, कि यह किसी रोगसे विकृत हो गया है। और उसकी किसी योग्य चिकित्सकसे चिकित्सा करानी चाहिए।

किसी रोग आदिके कारणसे यदि १८ दिनके पहिले रजोदर्शन हो तो उसकी शुद्धि स्नान मात्रसे हो जाती है। और यदि १८ दिनके पीछे हो तो उसका पूरा अशौच मानना चाहिए।

रजोवती स्त्रीको किसी भी प्रकारकी कुचेष्टा और नदीमें स्नान करना सर्वथा वर्ज्य है। (न करना चाहिए।)

जब स्त्रीको जान पड़े कि रजोदर्शनसे मेरे कपड़े अशुद्ध हो गए हैं, तो उसी समयसे किसी वस्तुको न छुए। यदि भोजन करते समय रजोदर्शन हो, तो भोजन छोड़कर स्नान करे, पश्चात् भोजन करे। जो ऐसी अवस्थामें यदि बच्चेको किसी वस्तुके स्पर्श करानेकी जरूरत हो तो बच्चेको स्नान कराले।

एकान्त स्थानमें रहे और आत्म चिन्तवन करे। अपनी अवस्थाको विचारे, और देश जाति तथा धर्मकी उन्नतिके उपाय सोचे। शय्यापर शयन न करे, किन्तु चटाई पर सोवे। यदि चटाई पर न सो सके तो ऐसे कपडों पर सोवे जो नित्य धोये या धुलाए जाकर शुद्ध किये जा सकें। गरिष्ठ-भोजन और पान इलायची आदि मसाले

भक्षण न करे। शृंगार न करे। आँखोंमें सुरमा न अँजन लगावे। गान न गावे। हँसी मसखरी न करे। मन्दिरमें न जावे। पतिसे भी बातचीत या हँसी न करे। ऐसे समयमें यदि कोई मूर्ख पति काम-सेवन करे तो उसे सुजाक गर्मी आदि भयानक रोग हो जानेकी अत्यधिक सम्भावना है। वैद्यकके सिद्धान्तोंके अनुसार, इस समयके काम-सेवनमें, एक तो गर्भ नहीं रह सकता और यदि कथंचित रह जाय तो बुद्धिहीन, दुष्ट, हीनाङ्ग (अपूर्णांग), और कुमार्ग प्रिय सन्तान होती है। ऋतुमती स्त्रीके स्पर्शसे बहुत ज्यादा बचना चाहिए। उसकी परछाईं मात्रसे, ताजे बने और बनते हुए पापड़ बड़ियां और आचार बिगड़ जाते हैं।

रक्तस्राव जिस दिनसे आरंभ हुआ हो उसके चौथे दिन (अर्धरात्रिके पीछे आरंभ हुआ हो तो दूसरे दिनसे शुमार करना चाहिए) स्नान कर शुद्ध हो गृहस्थीसम्बंधी कार्य कर सकती है। शृंगार आदि भी आज कर सकती हैं। पांचवें रोज नहा धोकर भगवानकी पूजन, शास्त्र स्वाध्याय और रसोई आदि भी कर सकती है। जो स्त्री इस प्रकार नियम पूर्वक आचरण करती हैं, वह यदि पहिले दिन गर्भवती हो जाय (ऋतुस्नानके पश्चात्) तो सुन्दर, सौभाग्य-शालिनी, सुलक्षणा और धर्मात्मा सन्ततिको जन्म दे। यदि दूसरे दिन गर्भवती हो तो किसी सुयोग्य प्रतापयुक्त सन्ततिको जन्म दे। और इसी तरह तीसरे और चौथे दिन आदिमें गर्भ धारण करने पर भी योग्य सन्तान होती है।

परन्तु ऐसा हो कैसे ? हमारी जातिमें तो कूट कूटकर अज्ञान भर गया है, जिसके फलस्वरूप हमारी जाति निकृष्ट, निर्बल और मूर्ख होती जा रही है। किया क्या जाय ? लोग शास्त्रोंकी सोनहरी बातें भूल गए हैं। सच्चे हितैषियोंकी उपदेशपूर्ण बातोंपर ध्यान नहीं देते। जाति और धर्मके उदय चाहनेवाले उपदेशकों और पत्रोंपकोंकी दिल्लगी उडाते हैं। उन्हें अपमानित करते हैं। अखबार-गजटोंमें प्रेम नहीं है, फिर किस रास्तेमें ये सुमार्गपर आयँगे सो भगवान जाने। भला, उपर्युक्त कार्यवाहीमें किस तरह हमें धर्म-अधर्म, कर्तव्य-अकर्तव्य, न्याय-अन्याय और योग्य अयोग्यकी पहिचान हो। कुछ विद्वानोंकी दशा तो ऊपर लिखे चली हुई। अब रहे स्वार्थ और अपना उल्लू सीधा करनेवाले मतलब गांठनेवाले वे गुणवान, जिनकी समाजमें कुछ चलती है। सो यदि, वे स्वार्थी हैं तो, न्यायका उपदेश नहीं कर सकते-सुसम्मति नहीं दे सकते, क्योंकि इसमें उनके इष्ट कार्यमें विघ्न पड सकता है। रहे श्रीमान सज्जन गण, सो प्रति शत दो एकको छोडके शेष विषया-शत्रु और धनके मदसे उन्मत्त हैं। उन्हें मनुष्य जीवनके उपयोग और कर्तव्यका ध्यान ही नहीं है। धर्मकी वास्तविकताको वे बेचारे जानते ही नहीं हैं।

अब हे डूबती हुई समाज-नौकाके निरवलम्ब आरोहियो-सवारो ! हे भाई बहिनो ! किसीका आश्रय न ताको; अपने शास्त्रोंका खूब बारीकीसे पठन और

मनन करो, खूब विद्योपार्जन करो; वास्तविक धर्म पहिचानो, कर्तव्य और अकर्तव्यकी परिभाषा सीखो; पुण्य पापकी पहिचान करो, अकर्तव्य और पापको छोडो, कर्तव्य और पुण्यमें प्रेम करो; जिससे तुम्हारा कल्याण हो। स्मरण रक्खो, तुम अपने बुरे भले भाग्यके बनानेवाले आप हो।

पंचम प्रकरण ।

मिथ्यात्त्व-निषेध ।

कुगुरु कुदेव कुधर्म जो अग्रहीत मिथ्यात ।
सेवन कर जग-जन-दुखी, भोगें तीव्र असात ॥

तुमने क्या कभी विचार किया है, कि जीव, पुद्गल आदि षट् द्रव्य और जीव, अजीव, आस्रव आदि सात तत्वों का स्वरूप क्या है ? और इनका श्रद्धान करनेमें क्या होता है ? क्या कभी सोचा है, कि मैं कौन हूं ? कहासे आई हूं ? मेरा इन कुयोनियोंमें सम्बन्ध होनेका कारण क्या है ? इस पर्याय के पीछे मुझे कहा जाना होगा ? मेरे साथ कौन कौनसी सामग्री जाएगी ? मैं रात दिन जो कुछ अच्छा बुरा करती हूं उसका फल क्या होगा ? परलोक क्या है ? तुमने कभी इन बातोंको नहीं सोचा, और इसी लिए अज्ञोंकी नाईं मनमाने मार्ग पर चल रही हो। तुम्हें आवश्यक है कि

सुगुरु, सुदेव और सुधर्मका समागम करो, निस्स्वार्थी विद्वानोंके व्याख्यान सुनो: तब तुम्हें मालूम हो जायगा कि आत्मा किस तरह अपने आपको भूल रहा है, शरीरसे प्यार कर रहा है, और इसीके लिए–उसीके भरण-पोषण और रक्षाके निमित्त–मनुष्य, तिर्यंच और नर्क पर्यायोंमें भ्रमण करता है, पुण्यपाप उपार्जन करता है, और उसके अनुसार दुख सुख उठाता है। कोई भी देवी देवता, या परमेश्वर उसे रोकनेमें असमर्थ है। अर्थात् प्रत्येक आत्मा अपनी भलाई और बुराई करनेमें स्वतंत्र है, उसके मार्गमें उसके सिवाय कोई दूसरा बाधा नहीं डिगरा सकता–रोडे नहीं अटका सकता। इसलिये हमें मिथ्या कल्पनाओंको छोड देना चाहिए और गृहस्थके धार्मिक षट्कर्मोंमें दत्तचित्त रहना चाहिए। कर्तव्य पालनेवाले ही पुण्य उपार्जन करते हैं और पुण्यवान ही सुख भोगते हैं; परन्तु जो कोई भी अपना हित भूल्ता है–श्रावक कुल, जिनधर्म और सत्य उपदेशके समागममें या धर्ममें संलग्न नहीं होता–वह अपनी इस अज्ञानतासे अन्तमें दु ख उठाता है। बहुतसी स्त्रिया सती, दुर्गा, सय्यद आदिकी पूजा करती हैं, पीपल बड आदिको किसी फलकी आशामें सींचती हैं; गोबर या मिट्टीके देवता बना पूजती हैं, भीतोपर भी देवताओंके चित्र निकाल उनकी पूजन–अर्चन करती हैं, सूर्य चन्द्रमाको अर्घ देती हैं, दिवालीको लक्ष्मी–रुपये, अशर्फी आदि की पूजा करती हैं, एकादशी अथवा चोदशको देव उठावनी करती हैं, पूर्णिमाको

गंगामें स्नान करती हैं, गौर पूजती और महादेवको जल चढ़ाती हैं, शिवरात्रि और ग्रहणका व्रत करती हैं, अनेक पीर, फकीर और साधुओंको पूजती हैं, और इस तरह धर्म छोड़ती, पैसा बरबाद करती, और अपने अमूल्य सतीत्वका भी बलिदान कर देती हैं।

उन्हें सोचना चाहिए कि संसारमें सब जीव अपने किए कर्मका फल भोगते हैं। इन्द्र, जिनेन्द्र और कोई भी देवदेवी उसमें थोड़ा भी अन्तर नहीं ला सकते। सच्चे देव, शास्त्र और गुरुको माननेमें चित्त निर्मल होता है, रागद्वेष घटता है, जिससे पुण्यके साथ सुखकी प्राप्ति होती है, परन्तु रागी द्वेषी देव और गुरु तथा असर्वज्ञ भाषित धर्मके समागममें कषायें बढ़ती हैं, और पापका बन्ध होता है, और पापके बन्धमें दुःख होता है। कभी कभी स्त्रियोंके निर्बल हृदयोंमें भयका भूत और व्यभिचारका प्रेत-वश घुस रहता है, सो कभी कभी तो वास्तवमें कोई भूत पिशाच आ सताता है, [बचारोंका भक्तोंपर ही जोर चलता है] और नहीं तो ये केवल बहाने मात्र होते हैं। कहनेका मतलब यह कि, जैन सरीखी उत्तम जातिमें, श्रावक सरीखे उत्तम कुलमें जन्म लेकर सर्वोत्कृष्ट, सब दोष रहित और सर्व गुण सम्पन्न जिनेन्द्रकी उपासक बनकर हम क्यों ऐरे गैरोंको ढूंढते फिरते हैं? यह तो वही हुआ कि अपने हीरेका कुछ भी मूल्य न करते हुए दूसरोंके काच ऐनेको लोड़ा जाय। उन्हें सोचना समझना चाहिए। और जैन धर्मके द्वारा अपना कल्याण

करना चाहिए। दूसरोंकी देखादेखी हमें गड्ढेमें न गिरना चाहिए—कुगुरु, कुदेव और कुधर्मकी पूजा अर्चासे बचना चाहिए। थोड़ा विचार करना चाहिए कि, जैनधर्म और अन्य धर्मोंके सिद्धांतोंमें कितना और कैसा अन्तर है। कहां जैन धर्म तो मोक्षका साधक, और अन्य धर्म मोक्षके बाधक, अर्थात् संसारके साधक*। यह जीव बिना पूरी वीतरागताके कदापि निष्कर्म याने मुक्त नहीं हो सकता; और उस वीतरागता प्राप्त करनेका साधन संसारमें एक जैनधर्म ही है, जिसमें मानो वीतरागता कूट कूटकर भरी गई है। भूधरदासजीने अपने जैनशतकमें एक जगह कहा है—

कैसे कर केतकी कनेर एक कही जाय,
आक दूध गाय दूध अन्तर घनेर है।
पीरी होत रीरी पै न रीस करै कंचनकी
कहां काककानी कहां कोयलकी टेर है॥
कहां भानु तेज भारो कहां आगिया विचारो
पूनोंको उजारो कहां मावस-अँधेर है।
पक्ष छोर पारखी निहार नेक नीके कर
जैन बैन और बैन इतनो ही फेर है॥

---

* जीव जबतक शुभाशुभ कर्मोंको करता है तब तक नियमसे उसका जन्म मरण होता रहता है, इसीका नाम संसार है। परन्तु जब यह जीव कर्मरहित हो जाता है, अर्थात् [illegible] प्राप्त कर लेता है, तब मुक्त [illegible] है। [illegible] संतान [illegible] [illegible] है, [illegible] मोक्ष [illegible] कारण [illegible] है, और [illegible]।

सम्पूर्ण शास्त्र यही कहते हैं कि विष खाना, अग्निमें जलना, जन्म इन मरना आदि अनर्थकारी कार्य तो एक ही जन्ममें दुःख देनेवाले हैं (?) परन्तु आत्मस्वरूप भुलानेवाले, अकर्तव्यमें करानेवाले, मानजन्य जगतके ठगनेवाले कुगुरु आदिका पूजन करन अनेक जन्ममें जन्म मरणका कारण होता है। उपदेश सिद्धान्त रत्नमालामें कहा है—

सप्पो एक्क मरण, कुगुरु अणता देइ मरणाइ।
तो वर सप्पो गहिय, मा कुगुरु सेवण भद्द॥

अर्थात सर्पके काटनेसे तो एक ही वार मरण होता है, पर कुगुरुके सेवनसे अनन्त जन्ममरण होते हैं। इसलिए हे भद्र सज्जनो! सापका ग्रहण करना तो भला, परन्तु कुगुरुका सेवन सर्वथा त्याज्य है।

जो स्त्रियां, पुत्र, सम्पत्ति और सुख आदिकी इच्छासे ढोंगियोंको पूजनी मानती हैं, वे उनके द्वारा ठगाई जाती हैं, व्याभ चारिणी बनाई जाती हैं। शास्त्रोंमें कहा है:—

जह कुच्छेसा रत्तो, मुसिज्जमाणोवि मम्मये हरिस।
तह मिच्छवेस मुहिया, गय पिण मुणन्ति धम्म णिहि॥

अर्थ—जैसे कोई वेश्यासक्त पुरुष धनादिक ठगाता हुआ भी हर्ष मानता है, वैस ही मिथ्यात्व भावसे ठगाए हुए जीव, अपनी धर्म-निधिके नाश होनेका कुछ भी विचार नहीं करते हैं।

जो स्त्री-पुरुष मन्दिरको नहीं जाते, सुचित्त हो दर्शन नहीं करते, शास्त्र नहीं सुनते और विद्वान् पंडितो द्वारा कभी

तत्त्वोंके स्वरूपका निर्णय कर, कर्तव्य और अकर्तव्य स्थिर नहीं करते, भला उनका विश्वास एक जगह कैसे स्थिर रह सकता है, वे कभी तो उन्हें नमस्कार करते, कभी इनकी पूजा करते, कभी अमुकजीको नारियल चढाते, और कभी तमुकजीके यज्ञ भंडारा करते हैं । जैसे सडा नारियल या खोटा पैसा अनेक घरोंमें चक्कर लगाता फिरता है वैसे ही उन स्त्री पुरुषोंका माथा, अनेक देवियोंके आगे फूटता फिरता है । धर्मपरीक्षामें कहा है:—

छप्पय—सर्व देव नित नमे, सर्व भिक्षुक गुरु माने,
सर्व शास्त्र नित पढे, धरम अधरम नहिं जाने,
सर्व गिरत नितकरे, सर्व तीरथ फिर आने,
परब्रह्मको छोड, अन्य मारगको ध्यावे,
इस प्रकार जो नर रहे, इसी भांति शोभा लहे ।
आश्चर्य ! पुत्र वेश्या तनो, कहो पिता कासों कहे ॥

अजैन लोग जैनियोंकी दिल्लगी उडाते हैं और कहते हैं कि जैनी देवी देवताओंकी कितनी निन्दा करते हैं, परन्तु छिपे छिपे किस तरह पूजन—अर्चन आदि करते हैं, कैसे निर्लज्ज और दभी हैं । इतना सुनते रहने पर भी, जैनी अपने आचरणोंको नहीं सुधारते ।

जैनियोंके घरोंमें स्त्रियोंकी इतनी चलती है कि उनके साम्हने पुरुष मानो गुलाम ही हैं । कहावत है "जैनी और हिन्दकाने, मुसल्मान मुजावे" और बात भी ठीक है— अपने शास्त्रों द्वारा सुदेव, कुदेव, सुगुरु, कुगुरुका स्वरूप

सुनने समझने पर भी खोटे मार्ग पर चलते हैं। इसी लिए जनी अंधे हैं। हिन्दुओंके यो है कि बिना समझे लकीरके फकीर बने सब देवोंको मानते पूजते हैं, केवल जैन धर्मसे दूर जाते हैं। अपने ही शास्त्रोंमें लिखे हुए ऋषभावतारकी भी निन्दा करते हुए कहते हैं "हस्तिना पीड्यमानोपि न गच्छेज्जैनमन्दिरम्" अर्थात् हाथीके पैरके नीचे दब कर मर जाना भला पर जैन मन्दिरमें जाना अच्छा नहीं। उनका ऐसा कहनेका यही प्रयोजन है कि अगर लोग जैन मन्दिरमें जाकर प्रत्येक मार्गको अच्छी तरह समझ जायँगे तो हिन्दू धर्म परसे उनकी श्रद्धा उठ जायगी। और मुसल-मान सुजाये इस तरह हैं कि अपने खुदा सिवाय एक खुदाके दूसरेको मानने पूजनेका विचार स्वप्नमें भी नहीं करते। वे साफ साफ कहते हैं "जिसके ईमानमें फर्क है उसके बापमें फर्क है"। इन बातोंसे जाना जाता है कि जैनी लोग हाथमें दीपक लिए हुए जान बूझकर कूएँमें गिरते हैं। अजैनियोंकी स्त्रियोंमें यह खूब देखा जाता है कि जरा जैसे ही कोई पीड़ा हुई कि, फौरन ओझा और जोगियोंकी पुकार हुई। वे लोग भी कोई तो पितरोंकी छाया कोई भूत प्रेत या चुड़ैलका लगना, और कोई शनैश्चर आदिका प्रकोप बताते हैं, और मनमाना लूटते खसोटते हैं। भोली स्त्रियां भी पाखंडियोंके पाखंडमें आ जाती हैं और शीतला भैरू, मसान आदिको नाना प्रकारसे पूजतीं, [illegible] [illegible] और उनके निकलती हैं। बड़े चावसे उनसे बलिदान करातीं

कबरस्तानोंकी मानता मानतीं और ताजियोंको रेवड़ी चढ़ाती हैं। ताबीज बँधवातीं, भभूतखातीं और न जाने क्या क्या गंडे डोरे करवाया करती हैं। गनीमत थी, यदि वे इससे सुखी भी होतीं, पर ऐसा होता नहीं है। इस तुच्छ भ्रम-जालमें पड़कर वे केवल दुखी ही और होती हैं। यदि जरा भी विचारशक्तिको काममें लावें तो स्वयं सोच सकती हैं कि, ये तुच्छ देव, गुरु जब स्वयं ही दुखी हैं, तो दूसरोंके दुखको क्या दूर करेंगे। और फिर "होनहार होके रहे" सुख दुःख कर्मानुसार होते हैं। उसमें अन्तर डालनेमें कोई भी समर्थ नहीं है।

हिन्दुओंके यहां एक कहावत कही जाती है और वह यह है —

देवी दुर्गा, सेठ शीतला, सब मिल हरि पै जाय।
बोलीं हरि! सब तुमको पूजैं, अब हम कम खाय॥
तब हरिजी झट यों उठ बोले, भूमण्डलमें जाओ।
जिस घर मेरो नाम नहीं है, उसको लूटो खाओ॥

जिससे मालूम होता है कि हिन्दूलोग भी और खासकर समझदार हिन्दू लोग इन्हें देवी देवताओंको नहीं मानते जानते। कोई जैन धर्मके तत्त्वको न समझनेवाली स्त्री यहां कह सकती है कि, हम बालबच्चोंवाले आदमी यदि ऐसा न करें तो चल नहीं सकता। हम ऋषि मुनि तो हैं ही नहीं, जो सब त्याग कर बैठ जाय। बाल बच्चोंका साथ है, यदि दुर्गा और

शीतला आदिको न मानें तो उनकी–बालबच्चोंकी-रक्षा कौन करे। उनसे मैं पूछता हूं कि, देव देवियोंके पुजारियोंकी उन स्त्री पुरुषोंकी जिनकी नाक देवी देवताओंके आगे नमस्कार करते करते रगड गई है–घिस गई है, सतति (बालबच्चे) क्यों मर जाती है ? माता शीतलाके पूजनेवाले–बडी भक्ति करनवाले–स्त्री पुरुषोंके बालबच्चे माताकी ही बीमारीमें क्यों मर जाते हैं ? क्या शीतला उनकी रक्षा नहीं कर सकती ? (हां वास्तवमें नहीं कर सकती।) तो फिर पूजा पाठ किस लिए ? अच्छा अब दूसरी तरहसे सोचो। अंग्रेज, मुसल्मान और दूसरे दूसरे जे मनुष्य जो देवी देवताओंको नहीं मानते, नहीं पूजते, उल्टी उनकी निन्दा और अविनय करते हैं, उनकी सन्तान क्यों भली चगी रहती है। शीतलाके रोगमें अच्छी क्यों हो जाती है ? सबकी सब मर ही क्यों नहीं जाती, क्योंकि देवी तो उन पर नाराज ही होगी। मेरी भोली और मूर्ख बहिनो, जो कुछ भी अच्छा या बुरा होता है सब अपने भाग्यसे, सब अपने शुभ या अशुभ कर्मके फलसे। कोई देवी देवता, पीर पैगम्बर, कोई क्षेत्रपाल या कोई तीर्थंकर, तुम्हारे भाग्यको बदल नहीं सकता। अपने कर्मोंका बुराभला फल तुम्हें देखना ही होगा, भोगना ही होगा। उसको कोई भी टाल नहीं सकता। प्राकृत पिङ्गल ग्रन्थ २ परिच्छेद १०७ में कहा है –

पाण्डव वसहि जन्म करीजे।
मपअ अजिम धम्मह दीजे।

माउजुहिट्ठिर मरुट पात्ता ।
दैविक ललिअ केण मिटाआ ॥

अर्थ—पाडव वशमें जन्म लेनेवाले, उत्तम सम्पदा और धर्मके धारण करनेवाले युधिष्ठिर सरीखे महाराज भी जब सकटको प्राप्त हुए, तो कहिए भाग्यको कौन मेट सकता है ? स्वामि कार्तिकेयानुप्रेक्षामें कहा है—

आउक्खयेण मरण, आउ दाऊण सक्कदे कोवि ।
तह्मा देविन्दो विय, मरणाउ ण रक्खदे कोवि ॥ १ ॥

अर्थ—आयु कर्मके क्षय होनेसे मरण होता है । आयु-कर्म देनेको कोई समर्थ नहीं है । इसी कारण देवपति इन्द्र भी किसीको मृत्युसे नहीं बचा सकता ।

और भी देखिए, भगवान आदिनाथ, प्रथमतीर्थंकर, कर्मभूमिके प्रवर्तक ब्रह्मा, भरत चक्रवर्तीके पिता और इन्द्रादि देवोंके पूज्य थे । वे भी अन्तराय कर्मके प्रबल उदयसे छ महीने तक निराहार विहार करते रहे । परम पुरुषोत्तम रामचन्द्रको वनवास और सरला सीताको वियोग प्राप्त हुआ । इसी प्रकार नवम नारायण श्रीकृष्णकी उत्पत्तिके समय न तो किसीने गाया, और न मृत्यु समय किसीने रुदन ही किया । इन दृष्टान्तोंसे जान पडता है कि जैसे अच्छे और बुरे कर्म किए जाते हैं, उनके अच्छे या बुरे फल स्वयमेव मिलते ही हैं । जो स्त्रिया इतना जान कर भी योग्य उपाय नहीं करतीं वे दीपक हाथमें लेते हुए

कुछम गिरती हैं। कैसा मूर्खताभरी बात है कि बच्चोंको शीतला निकलनेपर इलाज तो करती नहीं करती क्या है? माता-दुर्गाके गीत गाती हैं, उन्हें पूजती हैं पुआपूरी ले और माथेपर अंगीठी रख मातार मढ़ैया, उसे मनाने जाती हैं, दण्डवत करते करते मढ़ तक दौड़ती हैं। उन्हीं अपनी मूर्ख बहिनोंके लिए, माताकी बीमारीकी उत्पत्ति संक्षिप्तमें लिखता हूं। आशा है, वे अपनी अज्ञानता और कुदेवादिका पूजन-भजन छोड़ेंगी।

प्रकट हो कि माताके पेटकी गर्मीका कुछ अंश सन्तानमें आ जाता है। वही बिना ऋतु खान पान या और कोई ऐसा ही कारण पाकर बालकके शरीरमेंसे चेचकके दानों-फुन्सियों-द्वारा बाहिर निकलता है, जिसे लोग चेचक, भवानी, माता और शीतला आदि कई नामोंसे पुकारते हैं। यह केवल शारीरिक विकार है। किसी देव देवीका कोप नहीं है। इसके लिए लोग टीकाको अच्छा उपाय बताते हैं। कभी कभी टीकेकी सामग्री अच्छी न होनेसे जितना फायदा होना चाहिए, उतना नहीं होता। अर्थात् टीका लगने पर भी माताकी बीमारी कभी कभी निकल ही आती है।

इस बीमारीमें पहिले दो तीन दिन ज्वर आता है। फिर सिरसे फुन्सियोंका निकलना आरम्भ होता है और थोड़े दिनोंमें सारे बदनपर फुन्सियां हो जाती हैं। जब इस तरह चेचक निकलनेका हाल मालूम हो, तो बस कोई पकवान न बनाना चाहिए। रोगीकी माताके सिवाय दूसरी रजस्वला

स्त्रियोंकी दृष्टिसे उसे माताके रोगोंको बचाना चाहिए। मिर्च-
खटाई-चीजें अधिकतर न खिलानी चाहिए किन्तु तर भोजन
उसे देना चाहिए और सफाईका ख्याल रखना चाहिए। माताके
गीत गा गा करके अपने पुत्रको शयमे न खोना चाहिए,
या अन्धा, रोगी आदि न बनाना चाहिए। देखा गया है,
कि इन दिनों बहुतेरी स्त्रियां इसलिए मंदिर नहीं जाती कि
कहीं जिनेन्द्रके दर्शन करनेसे माताजी रुष्ट न हो जाय।
चलो अच्छा हुआ। यों ही दर्शन करने शास्त्र देने आदि
स्वाध्यायकी इच्छा नहीं थी अब उसके लिए मूर्खताका
पूरा कारण (कहने सुननेमें) मिल गया। सच है 'विनाश
काले विपरीत बुद्धि' अर्थात् जब बुरे दिन आते हैं तब
बुद्धि भी भ्रष्ट हो जाती है। तात्पर्य यह कि यदि ये ही
भोली स्त्रियां मंदिर जाएं शास्त्र स्वाध्याय करें और विद्वा-
नोंके व्याख्यान सुनें तो ऐसी मूर्खताओंमें न पडें क्योंकि
कर्तव्य अकर्तव्यका ज्ञान उन्हें दर्शन करनेसे- शास्त्र स्वाध्याय
और धर्मोपदेशसे-हो जाता है वे अपना भला और बुरा सम-
झने लगें। कोई यहां प्रश्न कर सकता है कि, कुगुरु, कुदेव,
और कुशास्त्र यदि कुछ नहीं जानता तो फिर क्यों इतने
मनुष्य उन्हें मानते हैं? इसका उत्तर यह है कि, बहुतसे
आदमी यदि शराब पीते हैं, तो कुछ शराबका पीना अच्छा
नहीं समझा जा सकता। अथवा यदि बहुतसे आदमी चोरी
करते हैं, तो चोरीका करना अच्छा नहीं समझा जा सकता।
कुदेवादिककी पूजन आदिका इसलिए विरोध है कि, उनकी

पूजनसे राग द्वेष आदि दुर्भावोंकी वृद्धि होती है, जिससे पाप कर्मका बन्ध होता है, जो दु खका कारण है। पर सुगुरु, सुदेव और सुधर्मकी पूजा-वन्दनासे विषय-कषाय मन्दकर परिणाम निर्मल होते हैं। जिससे पुण्य कर्मके बन्धमें इष्ट सामग्रीका समागम होता है।

लड़कोंके अज्ञानी, दुर्बुद्धि और अनाचारी होनेका एक कारण कुसंस्कार भी है। जो स्त्रियां नीच, व्यभिचारी और जगतके ठगोवालोंके फन्दमें पडती हैं, वे अपना धर्म कर्म, शील और श्रद्धा रूपी धन गमा बैठती हैं। आज-कल साधु, फकीर, भट्टारक और ऐसे ही और श्रद्धा भक्ति-भाजन व्यक्ति महा अवगुणोंकी खानि हो रहे हैं—महा पतित हुए होते हैं, अत स्त्रियोंको चाहिए, कि स्वप्नमें भी इन लोगोंके पास न जावें। ये पाखंडी और ठग लोग—ये रंगे हुए गुंडए—ये रंगल्याभक्त जान बूझकर स्त्रियोंको बिगाड़ते हैं। ये लोग धर्मात्माओं सरीखे नाम और वेश रखके खूब माल खाते और मजा उड़ाते हैं। ये इन्द्रियों और मनको वश करना तो दूर रहा, उल्टे व्यभिचारके साज सजते हैं और धर्मकी ओटसे चोट खेलते हैं। टट्टीकी आड़में शिकार करते हैं। धर्मबुद्धि और सच्ची स्त्रियोंके साम्हने इनकी दाल नहीं गलती। जब समाजका यह हाल है, तो क्यों न सारे दुर्गुणोंसे युक्त सन्तान होवे, परन्तु उन धर्मप्राण सच्ची स्त्रियोंकी सन्तान पुण्यके प्रसादसे सुशील, धर्मवान, गुणवान और विद्वान होती है। धर्मके प्रभावसे ऐसी स्त्रियोंकी-

सन्ततिको रोग पीडा आदि भी नहीं होती, और जो होती भी है तो शीघ्र ही शान्त हो जाती है। पुरुषोंको चाहिए कि ऐसे ढोंगी मायावी लोगोंके पास, अपनी स्त्रियोंको व यहिन बेटियोंको जानेसे बचावे।

धर्मात्माकी तो परछाई मात्रसे दूसरोंके विघ्न, कष्ट, रोग और शोक दूर हो जाते हैं। धर्मकी महिमा अचिन्त्य है। पद्मपुराणमें परम शीलवती श्री विशल्याकी कथा लिखी है कि, उसके पूर्व जन्मके जप, और शीलके प्रभावसे उसके स्नानोदकके–स्नान किए हुए पानीके–स्पर्शसे देशमें फैला हुआ मरी रोग शान्त होगया। उसीसे लक्ष्मणकी शक्ति और घायल सैनिकोंके घाव–कष्ट दूर हो गए। घाव भर गए। यह सब सम्यग्दर्शनका ही प्रभाव है। और सच भी है; क्योंकि जिस सम्यग्दर्शनके प्रभावसे मोक्ष रूपी अक्षय सम्पदा प्राप्त हो जाती है–जन्म मरण जैसा अद्वितीय प्रबल रोग दूर हो जाता है, तो साधारण शारीरिक रोगोंका कहना ही क्या है? इतनी सी बात ही क्या है?

इस प्रकार संसारमें भटकानेवाले मिथ्यात्वको छोड, अर्हत देव, निग्रंथ गुरु और दयामयी धर्मको सेवन कर षट्द्रव्य, सप्त तत्त्व, नव पदार्थका स्वरूप जानो। आत्माके सच्चे धर्मका श्रद्धान कर सच्चा सुख पाओ। मनुष्य-जीवनका यही लाभ है।

समयकी आवश्यकताके अनुसार स्त्रियोंको कुछ और भी शिक्षाएँ यहां लिखी जाती हैं। आशा है, स्त्रियां ध्यान देंगी।

विद्याके अभाव और कुसंगतिके प्रभावसे जैन स्त्रियां

भी व्याह और पुत्र जन्मके समय ऐसे बुरे गीत-सीठने-निर्लज्जगालियां-गाती हैं जो इस जैनकुलके सर्वथा विरुद्ध है। सोचो तो कि जब अपने माता पिता सास ससुर आदि गुरुजन, बेटा बेटी और जातिके जेठे नरनारी आदि बैठे हों तब गालियां गाकर, उन भद्दे, कर्णकटु सदाचार-भंजन और कुत्सा-व्यंजक शब्दोंकी द्वारा बरसा कर स्त्रियां क्या लाभ सोचती हैं ? उन्हें कुछ लाज नहीं आती ? जिन शब्दोंको सुनकर वेश्याएं भी शरमाती हैं उनके कहनेमें भद्र घरकी बहू बेटियां, और तो और, भरे बाजारमें, सभी तर-हके जेठ छोटे स्त्री-पुरुषोंके सामने, कुछ भी संकोच न कर, यह कितने शरमकी बात है। बड़ी प्रसन्न हो होकर सदा-चरणी स्त्रियोंको गालियां देना—कलंक लगाना—व्यभिचारिणी बनाना, कितने दुःखकी बात है। यह केवल उन स्त्रियों या उनके पतियोंकी अवहेलना है। इन निर्लज्जता भरे फूहड़ गीतोंके गानेका यही कारण मालूम होता है कि औरतोंकी लाज या शरमको दूर करना और शीलवान होते हुए भी ऐसे गायन गाकर अपने व्यभिचारपनेकी डौंडी (ढिंढोरा) पीटना। जिस प्रकार कोई कुट्टनी (स्त्री) दो चार वेश्या-ओंको साथ बिठाकर, व्यभिचार-सूचक आसन, बुरे गानों द्वारा, आनेजानेवाले पुरुषोंको लुभाती है। उसी तरह एक बड़ी निर्लज्ज गौनारी द्वारके निकट बहुतसी कुल स्त्रियां बैठकर, बुरे बुरे गीतों द्वारा अपना व्यभिचार-पन प्रकट करती हैं। और छोटी छोटी पुत्रियोंके कोमल

हृदयों पर अपनी इन बातोंसे बहुत बुरा प्रभाव डालती हैं। विवाह सरीखे पवित्र कार्योंमें तो, इसको पूरा पूरा मौका मिलता है। क्योंकि दिन पुरुष तो बरातके साथ कन्या-पक्ष वाले यहां फेरे फिराने चले जाते हैं, और यहां अवसर पाकर स्त्रियां, अपनी कौटुम्बिक सहेलियों और नीच जातिकी स्त्रियोंके साथ इकट्ठी हो, एक सुन्दर युवतीको पुरुषके वेषमें करके, उसका एक दूसरी स्त्रीसे काल्पनिक सम्बन्ध जोड़ती हैं। अथवा कभी कभी यह सम्बन्ध नहीं भी जोड़ती। केवल एक स्त्रीको दूल्हा बना देती हैं, और उसके साथ मनमाना कुचेष्टा करती हुई अश्लील और लज्जाजनक प्रकारके गीत गाती हुई, तथा ढोल बजाती हुई सारे बाजारमें फिरती हैं। इस कृत्यको देख और सुनकर लज्जाको भी लज्जा आती है।

धिक्कार है ऐसे लोगोंको, जो इन कृत्योंसे-इन घृणास्पद कार्योंसे-अपनी स्त्रियोंको नहीं रोकते। क्या कोई कह सकता है कि, ऐसे जाति धर्म और लोक विरुद्ध काम करनेवाली स्त्रियां शीलवती रह सकती है? कदापि नहीं। उनमें किसी न किसी व्यभिचारका अंश तो जरूर होगा। अथवा यों कहिए कि उनकी मूर्खता ही उन पर ये दोष आरोपित कराती है। गीत गाओ। उनकी मनाई नहीं है। पर ऐसे गीत गाओ जो देश जाति और धर्मके कल्याणका मार्ग बतावें, स्त्री-पुरुषोंको बुरे मार्गोंपरसे खींचकर अच्छे मार्गोंपर चलावें, और साथ ही उनके चित्तको भी प्रसन्न रखें।

ब्याहके समय बहुतेरी स्त्रियां अज्ञानता और अल्पप-

रम्पराकी नीतिमें अथवा अन्य मतावलम्बियोंकी देखादेखी देवी दिहाडी, चक्की, चूल्हा, देहली गणेश, कुम्हारका चाक और गधे आदिको पूजती और साथ गा। निर्लज्ज गीत गाकर समझती हैं कि इन बातोंमे ब्याह निर्विघ्न समाप्त होता है। यह उनका बडा भ्रम है। भला मूर्खतापूर्ण और अकार्योंमें कोई कब सफलता पा सका है। जो धर्मात्मा और बुद्धिमान हैं, वे जन्मसे मरण तकके सम्पूर्ण संस्कार शास्त्रानुकूल करके पुण्य-बन्ध करते है। जिससे अपने आप विघ्न आते ही नहीं। वे विवाहादिक संस्कारोंको भी शास्त्रानुकूल ही करते हैं। वर्तमानमें विवाह सम्बन्धी जो नेग या प्रथाएँ बुरी समझी जाती हैं उनकी वास्तविकताकी ओर दृष्टि देकर देखा जाय, तो जान पडता है कि सुरीतियां ही धीरे धीरे इस रूपमें आ गई हैं, जिन्हें अब हम बुरी और हानिकारक निगाहसे देखने लगे हैं। अगवानी (आतिशबाजी) शब्द हमें स्पष्ट बताता है कि, वर-पक्षकी बारातके आनेपर पेशवाई करना-स्वागत करना-ही अगवानी है। आश्चर्य नहीं कि, इस स्वागतकी प्रथामें कभी आतिशबाजी भी चलाई जाती रही हो। सो और आदरसत्कार तो गया। रही ये मुंह झुलसा देनेवाली और रुपयोंका धुआँ उडा देनेवाली आतिशबाजी। और क्या जाने किसी मन चले रईसजादेने ही, शायद इस न्याकारिणी प्रथाको जन्म दिया हो। समयके फेरसे न जाने कितनी अच्छी प्रथाएं अतीतके गर्भमें समा गईं, और उनके बदले कितनी ही नष्ट भ्रष्ट प्रथाएं उन्हीं पूर्व प्रथाओंके बचे

खुद ईर्ष्योद्वेषसे तैयार हो गई। अथवा अनेकों नई प्रथाएं उत्पन्न हो गई। उन्हीमेंसे अनेकोंके नाम भी अपभ्रंश होगए। किसी किसी देशमें विवाहके पूर्व कुम्हारके चक्रकी पूजन की जाती है; क्या जाने, शायद इसका प्रयोजन सिद्ध-चक्र-यन्त्रकी स्थापना हो ! इसी यन्त्रको भावर-फेरा-के पूर्व विवाह मण्डपमें लानेका नाम गणपाता-विनायकी-है। और भी कई क्रियाएँ ऐसी है जो (अर्थका अनर्थ) हो गई हैं। यदि उनके विषयमें छान बीन की जावे तो वे कोई अच्छी प्रथाएँ (आरम्भमें) निकलेंगी। चतुर व्यक्तियोंको चाहिए कि वे प्रत्येक कार्य्यका यथार्थ-वास्तविक-स्वरूप ही जानकर ठीक रीतिसे व्यवहार करें। विवाह आदिमें भोजन वगैरह शुद्ध सामग्री तैयार कराने और पानीके छाननेका पूरा यत्न रखना चाहिए जिससे उत्तम जातिका आचार विचार नष्ट न होन पावे। विवाहमें कभी भी कुमारियोंके बढानेवाले, अनर्थ-दंडरूप, लज्जाजनक, लोक-निंद्य, भंड-गीत भूलकर भी न गाए जाएँ। ऐसे गीतोंसे शीलमें दूषण लगता है। लोग निन्दा करते हैं कि ये उच्च जातिकी निर्लज्ज स्त्रियां गली गली कैसी निंद्य गालियाँ बक रही हैं और अपनी जाति तथा धर्मको लाञ्छन लगा रही हैं। जो बुद्धिमान स्त्रियां अपने लोक परलोक सुधारा चाहती हैं, वे ये भंडगीत गाना और अन्य मिथ्यात्व-सेवन कुछ भी निंद्य कार्य्य नहीं करतीं। शुभ क्रियाएँ करती हैं और सुंदर बोधमय और धार्मिक गीत गाकर पुण्य लाभ लेती हैं, जिससे उनका, उनके कुलका और उनके धर्मका यश जगतमें फैलता है।

पराए हितके लिए विद्वानोंके सिखापनोंपर चलना चाहिए, और उत्तम शिक्षाओंका प्रचार अपनी सन्तानमें करना चाहिए, ताकि वे धर्म और नीतिके मार्ग पर चलनेमें अग्रसर हो । प्रत्येक गृहस्थीमें उसकी आय (आमदनी) से थोडा खर्च होना आवश्यक है । अर्थात् जहांतक हो सके आयका आधा भाग कुटुम्ब-निर्वाहमें और चौथाई भाग पुण्य-दान आदि परोपकारके कार्योंमें व्यय कर शेषकी बचत रक्खे, क्योंकि बचा हुआ द्रव्य अकस्मात् आए हुए मौकोंपर ब्याह शादी और रोग आदिके समय बडा काम देता है । कहां, कैसा, और कितना खर्च करना, और कहां न करना यह ज्ञान प्रत्येक स्त्री पुरुषको सीखना चाहिए । बचत करनेका प्रत्येक उपाय सीखना और उसका उपयोग करते रहना यह एक सुन्दर कला है ।

इसमें अच्छे प्रकार खर्च करते हुए भी बचत हो जा सकती है । यह सच है कि घरकी पूंजीमें ही बरकत होती और मौकेकी गरज सरती है । यदि बचत न रक्खी जाय तो वक्त वक्त पर दूसरेके द्वारपर जाकर रुपया मांगना पडता है, जिसमें प्रथम तो अपना आभर (मीतरी मान) खुलता और उससे आंखें कुछ नीची पडती है । औरा-सीरा ब्याज देना पडता है और रुपया कर्जपर उठाना पडता है, जिसकी चिन्तामें रात दिन पडे रहते और किसी भी तरह-पापकर्म द्वारा भी-रुपये कमानेकी फिकर पडती है । कर्जदार आदमीकी साख प्रायः बाजारसे उठ जाती है और उसे लोग

उधार देनेमें सकोच करते हैं। बिरादरी, पुरा-पडोस, अथवा गाव-परगावके जो लोग तुम्हारी फिजूल खर्चीके समय वाह वाह करते थे, वही फिर आख उठाकर नहीं देखते कि कहीं कर्ज न मागने लगें 'देख लेते हैं तो कतराके निकल जाते हैं। बात जो आपड़ती है तो बातको बनाते हैं।" फिर तो यही हाल होता है। बाप दादोंतककी प्रतिष्ठा धूलमें मिल जाती है और कभी कभी तो यह कर्जकी पोटली नाती पोतों तक जाती है। इसीलिए नीतिमें कहा है कि "तेते पाव पसारिए जेती लाम्बी सोर" जो व्यक्ति इस नीति पर ध्यान देकर तदनुसार चलते हैं वे सुखी होते हैं। और जो नहीं चलते वे नाक पर कर्ज रूपी चक्करमें पड़ते हैं, और अपने जीवनको घोर दुःख-मय बनाते हैं। ब्याह शादीके समय, अथवा गमीके समय झूठी वाहवाही लूटनेके लिए हजारों रुपया बरबाद-व्यर्थ बरबाद-कर देते हैं, घरमें न होनेपर कर्ज लेकर खर्च करते हैं, और फिर जन्मभर शोक और नालिश कुरकीके दुःख उठाते हैं। इसी शोक तथा दुःखमे जर्जरित होकर अकालहीमें कालके गालमें समा जाते हैं। इसी फिजूल खर्चीके कारण जैन जाति अभागा हो रही है। कुछ उगलियों पर गिनने योग्य खाते पीते व्यक्तियोंको छोड़कर अधिकांश जैन जाति रोटियोंको तरस रही है। उनके दुःख मय जीवनकी कल्पना करते ही विचार होता है कि आज एक व्यापारी श्रीमान् जातिके अधिकांश धन, पेटकी ज्वालामें किस तरह जल रहे हैं,

अतएव प्रत्येक स्त्री पुरुषको इस शिक्षापर ध्यान देकर प्रामाणिक खर्च करना चाहिए और एक चौथाई आय प्रति मास बचाते रहना चाहिए। दम्पतिको धर्म और नीतिके अनुसार चलते हुए अपना गृहस्थाश्रम चलाना चाहिए।

यदि कोई स्त्री विधवा हो जाय तो अपने वय-प्राप्त पुत्रोंके आधीन रहे और उन्हींकी आज्ञानुसार चले। यदि कुटुम्बमें कोई पालन पोषण करनेवाला न हो तो उसे चाहिए कि अपने कुल और जातिके योग्य न्याय पूर्वक उद्योग करके अपना उदर निर्वाह करे और संतोष करके धर्ममें मग्न रहे।

देखा जाता है कि कोई कोई स्त्रिया विधवा हो जानेपर महीनों, रोया करती है। माथा पीटती और छाती कूटती है, पर यह सब व्यर्थ है। इनका चिल्लाना सुनता कौन है? और फिर इस दुखको दूर कर ही कौन सकता है। रोना तो मानो केवल मूर्खता दर्शाना है। बहुत जगह पुरुष और स्त्रिया फेरेको आती है, और मृत-व्यक्तिका गुणानुवाद करके उस बेचारीको और रुलाती हैं, जिससे उसे तीव्र आर्त परिणामों द्वारा नर्क-आयुका बंध होता है।

विधवा स्त्रीका बाहर न निकलना ही किसी तरह अच्छा है, परन्तु कारण-वश उसे निकलना ही पडता है। जैसे मंदिर आदिको। उसे विचारना चाहिए कि पूजन, अर्चन, दर्शन और -पठन-मनन हो तो पाप और दुःखके दूर कर [illegible] फिर मूर्खोंके कहनेमें आकर दर्शन

फ़लनको न जाना क्या सयानपन है? खान-पीने, ओढ़-पहन आदि सासारिक काम तो छुट ही नहीं सकता—होता ही है, परन्तु धर्मके लिए कोई प्रेरणा करनेवाला नहीं है। यदि तुम उसे भुला दो तो भले भुला दो, पर उसको भुलाकर तुम अपना दु ख दूर नहीं कर सकतीं, प्रत्युत बढ़ाती ही हो।

राजा राणा क्षत्रपति, हथियनके असवार,
मरना सबको एक दिन, अपनी अपनी बार ॥ १ ॥
दलबल देवी देवता, मात पिता परिवार,
मरती बिरियाँ जीवको, कोई न राखनहार ॥ २ ॥
आप अकेला अवतरे, मरे अकेला होय,
यों कबहूं इस जीवका, साथी सगा न कोय ॥ ३ ॥
जगवासी हम सब सदा मोहनिद्रा धार
मरवस लूट मुनि रही हम चोर चहुं ओर ॥ ४ ॥

अनेक विधवाएँ कुसगतिमें पड़कर अथवा अपना बुरा वातावरण देखकर, अपने धर्मको भूल जाती हैं—सत्पथसे डिग जाती हैं जिससे वे अपने दोनो कुलोंका नाम डुबाती हैं। और पुनर्लग्न-विधवा-विवाह-करके जन्म जन्मको वैधव्यका बीज बोती हैं। अथवा गुप्त व्यभिचार करती हैं, भ्रूण हत्याए करती हैं अथवा कभी कभी बालहत्या तक कर डालती हैं तब लोग इनकी ओर अगुली दिखा दिखाकर कहते हैं कि, यह अमुककी बहू बेटी है इसने भ्रूण हत्या आदि की है। ऐसी कुटिलाओं अनेक सुन्दर सदर्शी वस्त्रा-

भूषण पहिनतीं और तरह तरहके तर पदार्थ और मिष्टान्न खाती हैं। जिससे कामेच्छा बढती है। नाना भांतिके शृंगार-रससे चुहचुहाते गान गाती हैं और बडे मजे और शौकसे वह घृणित-कार्य करती हैं जो कलमसे नहीं लिखा जा सकता। नतीजा इसका यह होता है कि, अगले जन्ममें इस पापके दंड भोगनेके सिवाय यदि स्त्री देह मिली तो पुनः युवावस्थामें ही विधवा होना पडता है। जो अच्छे घरोंकी बहू बेटियां हैं वे ऐसे दुष्कर्म नहीं करतीं, और न ऐसी स्त्रियोंका साथ करती हैं। वे बडे ही धैर्यसे इस कर्म्म-फलको—इस पति वियोगके दुःखको—सहती हैं। और सहना ही चाहिए। कर्म फलका उदय अमिट है। प्राणी पंच पापोंमें लिप्त होते या लिप्त रहते हुए तो इसका कुछ खयाल नहीं करता, पर जिस समय उनका उदय आता है—इष्टका वियोग और अनिष्टका संयोग होता है—तो हाय हाय करता है।

परन्तु इस हाय हायसे दुःख घटनेका नहीं उल्टा बढता है। इसे तो—कर्म फल को—सन्तोष और प्रसन्नताके साथ भोग लेनेमें ही सार है। उस समय सोचना चाहिए कि पाप कर्मका उदय मेटनेको कोई समर्थ नहीं है। अंजना जैसी सती पूर्व पापके उदयसे २२ वर्षतक पतिकी अवहेलना—तिरस्कार—सहती रही; सासु श्वसुरादिकोंने ही व्यर्थका कलंक लगाया, गर्भावस्थामें ही पहाड और जंगल जंगल भटकना पडा—अनेक कष्ट सहे। सीता जैसी पतिव्रताको झूठा कलंक लगाया गया; [illegible] ही आज्ञासे नगरसे निकल नेसे

जाना पडा, और इस पर भी दुःखका अन्त न आया, अपने शीलकी परीक्षा देनेको अग्नि-कुंडमें प्रवेश करना पडा। अनेक महान व्यक्तियां पापके उदयमें राजासे रंक और रूससे कृश होगईं; तो हम सरीखोंकी बात ही क्या है? विचारना चाहिए कि, कदाचित् मैंने पूर्वभवमें जिनेन्द्रके प्रतिबिम्बका अनादर किया होगा, अविनय किया होगा; जिनमन्दिर या चैत्यालयके उपकरण चुराए होंगे, निर्माल्य भक्षण किया होगा, अशुद्धिकी अवस्थामें माननीय पूज्य-पुरुषों या ऋषियोंको भोजन कराया होगा, उसी अवस्थामें शास्त्र छुए होंगे व मन्दिर गई हूंगी, मन्दिरमें अशुद्ध द्रव्य चढाया होगा, जिन-मन्दिरमें प्रमाद, मूर्खता या कोई कुचेष्टा की होगी, मुनिदानमें अन्तराय डाला होगा, सं. धर्मात्माओंकी झूठी निन्दा की होगी, ...ठी चुगली खाई होगी, किसीके झूठ कलंक लगाया होगा, मिथ्यात्व सेवन किया होगा, हिंसाके कार्य किए होंगे, जेठे पुरुषों-मान-नीय पुरुषोंका अपमान किया होगा, अभक्ष्य भक्षण किया होगा, प्रतिज्ञा भंग की होगी, आशय यह कि, अनेक प्रकारसे पाप कमाया होगा, तभी तो यह पतिवियोगका दुःसह दुःख सहना पड रहा है। अब मेरा यही कर्तव्य है कि, इसे कारण समझके इस विपत्तिको बिना किसी संकल्प विकल्पके भोगूं और आगेके लिए धर्मसाधनमें सदैव तत्पर होऊं। यदि धर्ममें तत्पर न होऊंगी तो न जाने आगे मेरी क्या दुर्गति होगी—न जाने कैसे दुःख भोगने होंगे? अब ...ी मैं धर्मकी

शरण है, क्योंकि यही दुःखमे पार करनेवाला और भव भवमें सुख देनेवाला है ।

ऐसा ही विचार करे । अशांतिकी ओर अपने विचारोंको न ढुलने देवे । दान, व्रत, तप, नियम, पूजन और स्वाध्याय पूर्वक अपनी आयु पूर्ण करे । सांसारिक विषयोंसे-पंचेन्द्रियोंके विषयोंमे-दूर रहे । अपनी इंद्रियों और मनको वश करे । स्त्रीको श्रृंगार करना सधवा होनेपर ही शोभा देता है । विधवाका श्रृंगार धर्म-विरुद्ध, लोक-निंद्य और शीलका घातक है । विधवा अयोग्य वस्त्राभूषण धारण न करे । सधवाओं जैसे चटकदार कपडे और गहने न पहिने । अंजन आदि न लगावे । पान, इलायची और केसर आदि पुष्ट और कामोदीपक मसाले न खावे । माथेपर तिलक-बिंदी रोरी-न लगावे । बालों या कपडोंमें तेल या इत्र न लगावे । दूध, दही, घृत, मोदक आदि गरिष्ट और पुष्टिकारक भोजन अधिक परिमाणमें न खावे, क्योंकि इससे इंद्रिया प्रबल होकर अपने अपने विषयोंकी ओर खींचती हैं । यदि ये अथवा ऐसे ही और पदार्थ बिल्कुल न खाए जावें तो अच्छा है । किसी स्त्री या पुरुषसे हँसी तमाशे और कौतूहल आदि क्रिया न करे । नाटक सिनेमा, स्वांग, रहस, भांडोंके कौतुक और मेले तमाशोंमें न जावे । बुरे गीत न गावे और बुरे वार्तालाप न सुने । सधवाओंके सधवापनके चिन्होंकी-अलंकार आदिकी-इच्छा न करे । नीचेकी कविताको सोरे

चाहिए । विद्याहीन जैन-स्त्री-समाजको शिक्षित करनेके लिए हजारों अध्यापिकाओंकी आवश्यकता है; यदि विधवाएँ इस कामको हाथमें ले लें तो उनका जीवन सच्चे परोपकारमें लग सकता है; उनके व्यर्थ जीवनसे बड़ा उद्देश्य सिद्ध हो सकता है। समाज सेवा करनेसे उनका जीवन दिव्य जीवन बन जा सकता है । अमेरिका आदि देशोंमें ऐसी अनेकों समाज-सेविका विधवाएँ हैं । भारतीय विधवाएँ यदि स्त्री-शिक्षाका काम हाथमें ले लें, तो स्त्री जातिके सारे अज्ञान और कष्ट शीघ्र ही मिटा डाल सकती हैं। वे स्त्रियाँ धन्य हैं, जो विधवा होनेपर इस प्रकार अपने और पराए हितमें तत्पर हो जाती हैं । बहिनो, यह स्त्री पर्याय और जैन कुल तुम्हें किसी भाग्यसे मिला है । इस समयका एक भी क्षण तुम्हें व्यर्थ न खोना चाहिए । यदि दुर्भाग्यसे विधवा हो गई हो, तो भी अपने परिणामोंको सम्हालके रक्खो । धर्मध्यानमें अपना समय बिताओ । यह पर्याय, समुद्रके किनारे लगनेकी है । यदि इस समय तुम भूल गईं-चूक गईं-तो ठिकाने लगना मुश्किल है । उठते-बैठते, खाते-पीते, चलते-फिरते और प्रत्येक काम करते या न करते समय यह न भूलो कि हम मनुष्य हैं और हमारा काम धीरे धीरे कर्मोंके जंजालसे छूटना है ।

मनुष्य पर्यायके विषयमें एक कविने कहा है-

जाकों इन्द्र चाहैं अहमेन्द्रसे उमाहैं जामों,
जीव-मुक्ति जाय, भवमलको बहावे है ।

मानुष जनम पाय, सोवत विहाय जाय
खोवत करोरनकी एक एक घरी है ॥ ७ ॥
ढेरों भर योवनमें पुत्रको वियोग भयो
तैसे ही निहारी निज नारी कालमगमें।
जे जे पुण्यवान जीव दीसत हैं जग माहिं
रङ्क भये फिरैं तिन्हैं पनहीं न पागें।
एते पै अभाग, धन जीतवसे धैं न
होय ना विराग जान रहेंगो अन्ध नैं।
आखिन विलोके अन्ध सुम्मेकी अँधेरी कैं
ऐसे राज रोगको इलाज कहा ॥ ८ ॥

ऐसी हम ससारी जीवोंकी भ्रम-बुद्धि और मदान्धता देख श्रीगुरु करुणा करके इस प्रकार कहते हैं—

सप्तम प्रकरण

सूतक निर्णय

सूतक वृद्धिहानिभ्यां, दिनानि दश द्वादशे ।
प्रसूतिस्थानं मासैकं, दिनानि पंच गोत्रिणाम् ॥

अर्थ—जन्मका सूतक १० दिनका और मृत्युका १२ दिनका होता है। प्रसूति स्थानको १ माह और गोत्रके मनुष्यको ५ दिनका सूतक होता है।

प्रव्रजिते मृतेराग्ने देशान्तरे मृतेरणे ।
संन्यासे मरणे चैव, दिनैकं सूतकं भवेत् ॥

अर्थ—जो गृह त्यागी दीक्षित विदेशवासी या सन्यासी मरे अथवा जिसने संग्राममें प्राण छोडा हो तो इनका १ दिनका सूतक मानना चाहिए (यदि अपने कुलका हो तो।) यदि अपने कुलका कोई विदेशमें मरा हो और १२ दिन पीछे खबर मिले तो १ दिनका सूतक मानना चाहिए। यदि १२ दिनके पहिले खबर मिले तो १२ दिन पूरे होनें जितने दिन बाकी रहे हों उतने ही दिनका सूतक माने।

चतुर्थे दश रात्रिः स्यात्, षड्रात्रि पुंसि पंचमे ।
षष्ठे चतुराहःशुद्धि, सप्तमे च दिन त्रयं ॥
अष्टमे पुंस्यहोरात्रिः, नवमे प्रहरद्वयं ।
दशमे स्नानमात्रं स्यात्, एतद्गोत्रस्य सूतकम् ॥

अर्थ-तीन पीढ़ी तक १२ दिन, चौथी पीढ़ीमें १० दिन, पाँचवीं पीढ़ीमें ८ दिन, छठवी पीढ़ीमें ४ दिन, सातवीं पीढ़ीमें ३ दिन, आठवी पीढ़ीमें १ दिन रात्रि, नवमी पीढ़ीमें २ प्रहर और दशवी पीढ़ीमें केवल स्नान न करने तक सूतक जानना चाहिए।

यदि गर्भे विपत्तिः स्यात् श्रवणा चापि योषिता ।
यावन्मासस्थितो गर्भे-स्तावद्दिनानि सूतकम् ॥

अर्थ-स्त्रीका गर्भ पतन हो तो जितने मासका गर्भ हो उतने दिनका सूतक मानना चाहिए।

पुत्रादि सूतके जाते, गते द्वादशके दिने ।
जिनाभिषेकपूजाभ्या पात्रदानेन शुद्ध्यति ॥

अर्थ-पुत्रोत्पत्ति आदिके सूतकमें १२ दिन उपरान्त भगवानका अभिषेक, पूजन तथा पात्र-दान करनेके पीछे शुद्धि होती है। (यहा सूतक शब्दमें जन्म, मरण दोनोंके सूतक समझना चाहिए।) कभी कभी जन्मका १० दिनका और मरणका १२ दिनका सूतक माना जाता है।

अश्वा च, महिषी, चेटी, गौ प्रसूता गृहागणे ।
सूतक दिनमेक स्यात्, गृहवाह्ये न सूतक ॥

अर्थ-घोड़ी, भैंस, दासी, गौ आदि जो अपने घरके आगनमें (घरके भीतर) जनें, तो १ दिनका सूतक होता है, जो गृह बाहिर जनें तो सूतक नहीं।

सतीना मृतक हत्या पाप षण्मासक भवेत ।
अन्या सामान्य हत्याना, यथा पाप प्रकाशयेत् ॥

अर्थ—अपनेको अग्निमें जला लेवे, ऐसी सती होनेका पाप (सूतक ?) ६ मासका होता है । और हत्याओंका पाप (सूतक ?) भी यथा योग्य जानना चाहिए ।

दासी दासस्तथा कन्या, जायते म्रियते यदि ।
त्रिरात्रि सूतक ज्ञेय गृहमध्ये तु दूषणम् ॥

अर्थ—जो दासी, दास तथा कन्या जन्मे या मरे, तो ३ रात्रिका सूतक है । यदि गृहके बाहिर हो तो सूतक नहीं होता है । (यहा मृत्युकी मुख्यता वश ३ दिनका सूतक कहा है ।)

महिष्या पक्ष क्षीर, गोक्षीर च दशो दिन ।
अष्टम दिनमें जाया, क्षीर, शुद्ध न चान्यथा ॥

अर्थ—जननेके बाद भैसका दूध १५ दिनमें, गायका दूध १० दिनमें और बकरीका दूध ८ दिनमें खाने योग्य शुद्ध होता है ।

क्षीर–जात दन्त शिशोर्नाशे, पित्रोर्दशाह सूतक ।
गर्भस्रावे तथा पाते, विनष्टे तु दिनत्रय ॥

अर्थ—जिस पुत्रके दांत आगये हो उसके मरणका सूतक १० दिनका, और गर्भस्राव तथा गर्भपात और विनाशका सूतक ३ दिनका है ।

त्रिपक्षे शुद्धयते सूती, दिने पंच रजस्वला।
परपुरुषरतानारी, यावज्जीवे न शुद्धति ॥

अर्थ—जिस स्त्रीके बालबच्चा हुआ हो वह डेढ़ महीनेमें, और रजस्वला ५ दिनमें शुद्ध होती है, परन्तु व्यभिचारिणी स्त्री कभी शुद्ध नहीं होती। सदा अशुद्ध—अस्पर्श्य रहती है।

करि सन्यास मरे जो कोय। अथवा रणमें जूझो होय।
देशान्तरमें छोड़े प्राण। बालक तीन दिवस लौं जान॥
एक दिवस हो इनको सोग। आगे और सुनो भविलोग॥
मोटा बालक दासी दास। अरु पुत्री सूतक इमि भास॥
दिवस तीन लों कह्यो बखान। इनकी मर्य्यादा इमि जान॥

भावार्थ—८ वर्ष तकके बालकका ३ दिनका सूतक जानो। देशपद्धति—रूढ़िसे इसमें कितने ही मतभेद हैं, इसलिए देश-पद्धति—रूढ़िसे उसका पालन करना चाहिए।

ग्रन्थकर्त्ताका परिचय ।

कवित्त–दिल्ली सेती पश्चिम ठाम, बसे है गनोर गाम,
ताको वासी जयदयाल जैनी इक जानिये ।
धर्महीमे राखे प्रीति, गहै नही दूजी रीति,
अग्रवाल गोयलगोत्र, मद बुद्धि मानिए ।
श्रावक धरमसार तामें लख हीनाचार,
कीन्हो यो विचार नारी धर्मजु बखानिये ।
लखि मोहि ज्ञानहीन, क्षमो गुणीजन प्रवीण,
कीजिए सुधार अर भूल चूक जानिए ॥ १ ॥

दोहा–लाला गंगा विष्णुसुत, रामनाथ घर भाल ।
तसु सुत हरपरसादमल, ता सुत यह जयदयाल ॥२॥

विक्रमाब्द उन्नीश शत, ठावन ऊपर जान ।
पौष शुक्ल दोयज तिथी धनराशी परमान ॥ ३ ॥

पुस्तक पूरण है करी, क्षमियो चूक सुजान ।
पढो सुनो औ आचरो, तो पाओ सुखथान ॥ ४ ॥

इति ।

शान्ति शान्तिः शान्ति.